मूर्त्तिपूजामण्डन

ले० ब्रह्मदेव शास्त्री

श्री[illegible]

मूर्त्तिपूजा-मण्डन ।

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद् देवर्षिपितृतर्प्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च ॥

मनु० अ० २

रचयिता—

पं० ब्रह्मदेव मिश्र शास्त्री, काव्यतीर्थ,
सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व

तृतीयावृत्ति

१००० प्रति] १९७६ वि० [मू० ।।।)

सन्तोषजनक खण्डन करने वाले महोदय को
१०००) पारितोषिक दिया जायगा ।

Printed and Published

BY

Pandit Brahma deva misra

at the Brahma Press Etawah.

समर्पणम् ।

मण्डनं मूर्त्तिपूजायाः शास्त्रेषु बहुधोदितम् ।
तेभ्यः सारं मयोद्धृत्य ग्रन्थेऽस्मिन् विनिवेशितम् ॥ १ ॥
प्रमाणानाञ्च युक्तीनां बाहुल्यमिह वर्त्तते ।
तत्सन्तो द्रष्टुमर्हन्ति कार्याकार्यविवेचकाः ॥ २ ॥
अहन्यहनि कर्त्तव्या मूर्त्तिपूजा द्विजोत्तमैः ।
सारमेतद् भगवतो धर्मस्य प्रतिपादितम् ॥ ३ ॥
नाम्ना तु ब्रह्मदेवोऽहं भीमसेनात्मजो द्विजः ।
मिश्रवंशसमुत्पन्नो घृतकौशिकगोत्रभृत् ॥ ४ ॥
रसद्वीपाङ्कचन्द्रैस्तु युते विक्रमवत्सरे ।
अनुसृत्य सतां मार्गं ऋणञ्चापि स्मरन् पितुः ॥ ५ ॥
समर्पये ग्रन्थमिमं पितृरूपपरात्मने ।
दिवङ्गताय पूज्याय शिवलोकविहारिणे ॥ ६ ॥

यतो जन्म मया लब्धं येनास्मत्पालनं कृतम् ।
येन दत्ता शुभाविद्या न तस्यापार्णता भवेत् ॥ ७ ॥
अपार्णता तु नो शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ।
तथापि चापलादस्मि धृष्टतां कर्तुमुद्यतः ॥ ८ ॥
अनेन मम कार्येण प्रीयन्तां पितृदेवताः ।
दिवङ्गताः शुभां दृष्टिं वितरन्तु ममोपरि ॥ ९ ॥

इटावा
आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा

समर्पयिता—
ब्रह्मदेवः ।

निवेदन

अब से कोई १०-१२ वर्ष पहिले इस पुस्तक का प्रथम संस्करण निकला था उस समय इसमें बहुत कम पृष्ठ संख्या थी और जल्दीमें लिखे जानेके कारण कई बातें छूट गईं थीं। दूसरे संस्करणमें भी कोई विशेष बात नहीं बढ़ाई जा सकी। पर अब की बार तीसरे संस्करण में यह पुस्तक अपने पहिले आकार से करीब चौगुनी बढ़ गई है। इस बार मूर्त्तिपूजा के सम्बन्ध में जो प्रश्न अभी तक आर्यसमाजियों द्वारा किये गये हैं उनके उत्तर इस में सन्निवेशित कर दिये गये हैं। इन प्रश्नों के उत्तर ब्राह्मणसर्वस्व में अब से कई वर्ष पहिले बहुत दिनों तक निकलते रहे थे यह कहना व्यर्थ है कि उस समय स्वर्गीय पूज्यपाद पितृचरण श्री पं० भीमसेन जी शर्मा ब्राह्मण सर्वस्व के सम्पादक थे इस लिये यह उत्तर उन्हींके लिखे हुये हैं और उन्हीं की इच्छा से इस पुस्तकमें सम्मिलित कर दिये गये हैं। अतएव इस पुस्तक का अधिक अंश स्वर्गीय पिता

जी की लेखनी से लिखा हुआ ही समझा जाना चाहिये त-थापि जिस तरह पिता की उपार्जित सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र होता है उसी तरह इस पुस्तक के पितृलिखित अंश का मुझे अधिकारी मान लिया जाय तो दूसरी बात है। तथापि मूल लेखक स्वर्गीय पिता जी ही रहेंगे इसमें सन्देह नहीं।

मूर्त्तिपूजा के विषय में सनातनधर्म की ओर से अब तक अनेक पुस्तकें निकल चुकीं हैं और सब में अपने २ ढंग से इस विषय का अच्छा प्रतिपादन किया गया है तथापि अन्य पुस्तकों से इसमें जो विशेषता है वह पाठक स्वयं पढ़कर ही अनुभव कर सकते हैं इस विषय में हमें अपनी ओर से कुछ वक्तव्य नहीं।

दृष्टि दोष से एवं अनेक समय बाहर रहने आदि कारणों से इस पुस्तकमें कुछ अशुद्धियां छपनेकी रहजाना भी सम्भव है। शुद्धाशुद्धि पत्र इस लिये नहीं लगाया गया कि शुद्धा-शुद्धि पत्र से मिला २ कर प्रत्येक अशुद्धि का संशोधन पाठक उस २ स्थल पर करदें यह तो सम्भव नहीं तथा जो विद्वान् हैं शिक्षित हैं वे स्वयं अशुद्धि को जान लेते हैं। अतः शुद्धा-शुद्धि पत्र की तादृश आवश्यकता नहीं समझी गई।

निवेदक—

ब्रह्मदेव शास्त्री।

मूर्त्तिपूजा-मण्डन ।

प्रस्तावना ।

प्रिय पाठक! आज आप लोगों के समक्ष मैं मूर्त्तिपूजा मण्डन नामकी इस छोटीसी पुस्तक को लेकर उपस्थित होता हूं मुझे आशा है कि इसमें मेरे प्रमाद या अनभिज्ञतावश जो त्रुटियां रह गई होंगी उन्हें आप अपने कृपा कटाक्ष से संशोधित कर मुझे सूचना देंगे, इस पुस्तक में यथासम्भव वर्त्तमान आर्य्यसमाजियों के उन सब मिथ्या आक्षेपों का (जो कि वे मूर्तिपूजा जैसे उत्तम विषय पर करते हैं) उत्तर दिया गया है, सम्भव है कि इस में कुछ प्रश्नों का उत्तर इस कारण न आ सका हो कि वे हमारे श्रवणगोचर न हुए हों, ऐसी दशा में यह प्रार्थना है कि हमारे पाठक ऐसे आक्षेपों को भेजें जिस से आगामी आवृत्ति में उनका भी उत्तर छपा दिया जाय।

प्रसंगवश मुझे दो चार बातें यहां आप से और भी कह देनी हैं, सृष्टि के आरम्भ काल से लेकर यह भारतवर्ष सदा सर्वदेशों का मुकुटमणि रहा है, यहीं से समस्त अन्य द्वीप निवासियों में शिक्षा और सभ्यता की प्रज्वलित रोशनी पहुंची, आस्तिक और नास्तिक यहां हमेशा से रहे, जिस तरह सुख

दुःख, इष्टानिष्ट, पाप पुण्य, धर्माधर्म, जीवन मरण, हानि लाभ और संयोग वियोगादि का साहचर्य सम्बन्ध है ठीक उसी तरह आस्तिकता और नास्तिकता का भी साहचर्य सम्बन्ध है, जो समझते हैं कि इस सृष्टि का रचने वाला कोई सर्वोपरि शक्ति सम्पन्न है वे आस्तिक हैं जो समझते हैं कि यह सृष्टि स्वयमेव उत्पन्न हुई है पदार्थद्वय के संयोग से एक तीसरा पदार्थ हो ही जाता है इसके लिये किसी अन्य स्रष्टाकी आवश्यकता नहीं वे नास्तिक हैं, यहां हम ईश्वर के अस्तित्व, या उसके सृष्टिकर्त्तृत्व की आलोचना न कर केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि जो आस्तिक हैं, जिन्हें ईश्वरके अस्तित्व पर दृढ़ विश्वास है जो उसे सर्वव्यापी जगन्नियन्ता जगदाधार आदि अलौकिक गुणशक्ति विशिष्ट मानते हैं वे उस की उपासना प्रार्थना भक्ति पूजा आदिको भी कर्त्तव्य समझते हैं।

अब विचार यह करना है कि उसकी पूजा या उपासना किस रीति से हो सकती है यह कहना अनुचित न होगा कि जो ईश्वर को निराकार मानते हैं उनके सिद्धान्तानुसार उस की पूजा हो ही नहीं सकती, जिस निराकार ईश्वर में मन सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियों की गति नहीं है, अशब्द होने से जिसे सुन नहीं सकते, अरूप होने से जिस का दर्शन नहीं

कर सकते, अस्पृश्य होने से जिसे छू भी नहीं सकते, अगन्ध होने से जिसे सूंघ भी नहीं सकते, स्वाद भी जिस का लिया नहीं जा सकता। बतलाइये फिर कौनसा तरीका शेष रहा जिसके द्वारा उस परमात्मा का ज्ञान किया जासके प्रत्यक्ष देख लीजिये कि जिस वस्तुको एकवार किसीने देखा है वह फिर उस के आकार प्रकार, लम्बाई चौड़ाई, रूप रंग, गन्ध इत्यादि तद्गत गुणों का ध्यान कर सकता है, या यह समझिये कि जहां ध्याता ध्यान ध्येय ये तीनों पदार्थ होते हैं वहां ध्यान हो सकता है जहां इनमें से एक का भी अभाव है वहां ध्यान बन ही नहीं सकता, हमारे दयानन्दी भाई हैट कोट बूट और पटलून डाटे हुये एक कुर्सी पर सन्ध्या करने के लिये बैठ जाते हैं, प्राणायामार्थ आंखें बन्द कर लेते हैं जब आंखें खोलते हैं तो सामने कमरे की तस्वीरें आदि दिखाई देती हैं और आंखें बन्द करते हैं तो उन्हें हरा पीला दिखाई देता है बस यही ईश्वर का साक्षात्कार है यही उन की उपासना है, और दूसरी तरफ हमारे वैदिकधर्मी उषःकाल में ही प्रातःकालिक कार्यों से निवृत्त होकर शिवहरे, शिवहरे कहते हुए किसी शुद्ध मन्दिर में पहुंच जाते हैं भगवान् की मूर्त्तिका साक्षात्कार दर्शन करते हैं मूर्त्तिको स्नान कराकर षोडशोपचार पूजन करते हैं। वेदमन्त्रों की ध्वनि से मन्दिर गूंज

जाता है यही परमात्मा की साकारोपासना है यह प्रत्यक्ष भगवद्दर्शन है आप स्वयम् निर्णय करलें हमें विशेष कहने की आवश्यकता नहीं।

हमारे कुछ चलतेपुर्जा पर पक्षपातग्रस्त आर्यसमाजी पंडितों ने सर्व साधारण में यह मिथ्या विश्वास उत्पन्न करने का दुस्साहस किया है कि मूर्तिपूजा वेदोंमें नहीं है और जैनियों के बाद यहां इसका प्रारम्भ हुआ है उन लोगों का यह कथन सर्वथा मिथ्या है यद्यपि " मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् " के अनुसार ब्राह्मणभाग की भी वेद संज्ञा है तथापि ब्राह्मणों के सिवाय मूल वेद चतुष्टय में भी मूर्त्तिपूजाविधायक मन्त्रों की कमी नहीं है और इसके सिवाय अन्यान्य शास्त्रोंमें भी सैकड़ों प्रमाण मूर्त्तिपूजा के हैं उनमें कुछ का दिग्दर्शन इस पुस्तक में किया गया है आर्यसमाजियों का उक्त कथन उस दशामें हम भी सत्य मान सकते हैं कि यदि वे वेदादि शास्त्रों को जैनियों के मत के पीछे के बने हुए मानें।

इस पुस्तकके लिखनेमें मुझे पं० गङ्गाधर पचौली भरतपुर के लिखे हुए एक निवन्ध से विशेष सहायता मिली है एतदर्थ वे मेरे अन्तःकरण से धन्यवाद के भाजन हैं।

निवेदक—ब्रह्मदेव शर्म्मा इटावा

॥ श्रीहरिः ॥

मूर्त्तिपूजा मण्डन ।

प्रिय पाठक ! आज मैं आपके समक्ष उस विषय के एक निबन्ध को लेकर उपस्थित होता हूं जिसके विषय में बहुत लोगोंको कई तरहके मिथ्या भ्रम उत्पन्न हो गये हैं, चाहे इस का कारण कलियुग की वर्त्तमान अवस्था कहा जाय, या विदेशीय शिक्षा के कुसंस्कारों का बुरा प्रभाव कहा जाय, कुछ भी हो शास्त्र और शास्त्रानुकूल सद्युक्तियोंको निर्भ्रान्त प्रमाण मानने वालोंको ऐसा वर्त्तमान युग कदाचित् ही पूर्व किसी समय उपस्थित हुआ हो, जिस तरह वर्त्तमान में भारतवर्षके बल-विद्या बुद्धि और शिल्पादिकी चरम दुरवस्था है ठीक वही हाल धर्मके विषय में भी उपस्थित है जो भारत वर्ष धर्म का एक मात्र आधार था जहां के निवासियों की अनेक धर्म सम्बन्ध में आश्चर्य प्रद कथायें अब तक आबाल-वृद्धवनिताके हृदय मंजूषामें सादर निहित हैं। वहां धर्मदेव की ऐसी दुरवस्था देखकर किस सहृदयका हृदयपुष्प न विदीर्ण होता होगा, जो कभी आश्रयदाता था वह स्वयं आश्रय

ग्रहीता हो रहा है इसमें अधिकतर दोष एतद्देशवासी भारत माता के दुष्पुत्रोंका है कि जो इसे प्रशान्त महासागर के अ- तलतल में निमग्न करनेका प्रयास कर रहे हैं धर्म सम्बन्धके जिन विषयों में सर्वसाधारणको मिथ्या भ्रम उत्पन्न कराया जाता है उनमें से एक अन्यतम विषय मूर्त्तिपूजा है । प्रिय पाठक! मूर्त्तिपूजा शब्दके पर्य्यायही मूर्त्तिपूजन प्रतिमापूजन देवपूजन इत्यादि हैं वास्तव में ये सब शब्द अभेदार्थ हैं, वेदादि सच्छास्त्र द्वारा प्रतिमापूजन सिद्ध करनेसे पूर्व यह विचारणीय है कि प्रतिमा किसको कहते हैं प्रतिमा शब्द संस्कृत भाषाका है और प्रति पूर्वक मा धातु से (जिसका अर्थ मान करना, प्रमाण करना है) बना है (प्रतिमीयते तो- ल्यते अनया इति प्रतिमा) अर्थात् जिसके द्वारा दूसरी वस्तु का प्रमाण किया जा सके वा जिसमें दूसरी वस्तु के प्रमाण करनेकी शक्ति हो उसको प्रतिमा कहते हैं प्रत्यक्षादि जितने प्रमाण हैं उनमें अन्य वस्तु को प्रमाण करनेकी शक्ति है इस कारण सामान्य रीति से उन्हें भी प्रतिमा कह सकते हैं पर विशेषरीत्या प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे जिसकी सिद्धि न हो सके उसका जिससे प्रमाण हो उसे प्रतिमा कहते हैं जैसे अन्नादि जो वस्तुयें तौली जाती हैं वे सब वस्तुयें प्रत्यक्ष इन्द्रियोंका

विषय होनेसे विदित ही हैं तथापि उनकी तौल प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय नहीं और न किसी अनुमानादि प्रमाण की गति है इसलिये शब्दादिको तोलने के लिये जो पंसेरी आदि बाट कल्पित किये जाते हैं वे भी प्रतिमा हैं यदि विशेष विचारसे देखा जाय तो प्रतिमासे रिक्त कुछ न मिलेगा, और यदि इन तौल आदि के लिये प्रतिमा न बनाई जावें तो बड़ी दिक्कत आपड़े।

इसी प्रकार अकारादि स्वर और ककारादि व्यञ्जन शब्दात्मक वाणीके विवर्त्त हैं और शब्दात्मक होने से प्रत्यक्ष आकृति रहित हैं परन्तु इन को याद रखने के लिये तथा समझने के लिये बुद्धिमानों ने शब्दात्मक स्वर व्यञ्जनादि की एक २ कल्पित मूर्त्ति रेखाओं द्वारा नियत करली है और जहां कहीं इन कल्पित रेखाओं से नियत किये हुए आकार को देखते हैं वहां ही जिन स्वर वा व्यञ्जनकी वे कल्पित आकृति हैं उसी स्वर वा व्यञ्जन का उच्चारण करते हैं इसी प्रकार शब्दात्मक ओ३म् शब्दकी कल्पित मूर्त्ति 'ओं' है।

और लीजिये काल विभु है एक है अखण्ड है पर उस के भी व्यवहार के लिये खण्ड करने पड़े वर्ष ऋतु मास पक्ष दिन रात्रि प्रहर घटी मुहूर्त्त निमेष आदि कितने ही खण्ड

हो गये कितनी ही मूर्त्तियां करनी पड़ीं और प्रत्यक्ष मूर्त्ति खड़ी बना ही तो डाली।

सब जानते हैं कि शून्य का कुछ आकार नहीं है पर समझनेके लिये उसका भी आकार बनाना पड़ा, रेखा उसको कहते हैं जिसमें लम्बाई तो हो पर चौड़ाई न हो पर विचार कर देखा जाय तो ऐसी रेखा बनाई ही नहीं जा सकती।

इसी तरह ओङ्कार तथा कल्पित रेखाओं के आकार में कागज पर लिखे हुये वेद पुस्तक अपने लक्ष्य परमात्मा की प्रतिमा हैं अब जब कि प्रच्छन्न नास्तिकों के मतमें सर्वव्यापक परमात्मा एकदेशी नहीं हो सकता उस की प्रतिमा नहीं बन सकती तो उन लोगों को इस दशा में वेद भी माननीय नहीं ठहर सकते क्योंकि वेद स्वयं ही उस परमात्मा की प्रतिमा हैं तो फिर यह कहना भी ठीक नहीं बनता कि प्रतिमा पूजन वेदविरुद्ध है क्योंकि जिन वेदोंसे प्रतिमा का निषेध किया जाता है वे स्वयं ही प्रतिमा सिद्ध हो गये।

अब शङ्का यह रहती है कि निराकार परमात्मा की मूर्त्ति कैसे बन सकती है सो ध्यान रखना चाहिये कि निराकार परब्रह्म परमात्मा की मूर्त्ति वा प्रतिमा तो सनातनी भी नहीं मानते किन्तु हमारे यहां तो परमात्माके दोनों रूप वेदमें लिखे हैं।

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चैवामूर्त्तञ्च।
उभयं वा एतत्प्रजापतिः परिमितश्चाप-
रिमितश्च।

परमात्मा के मूर्त्त और अमूर्त्त दो रूप हैं। प्रजापति के भी दो रूप परिमित तथा अपरिमित हैं।

पूर्वोक्त प्रमाणों से परमात्मा का साकारत्व तथा निराकारत्व सिद्ध होता है।

इसके सिवाय आर्यसमाजी कहते हैं कि हम निराकार का पूजन उपासना वा ध्यान करते हैं सो यह भी उनका अज्ञान है क्योंकि निराकार का ध्यान ही नहीं हो सकता क्यों कि जो पदार्थ साकार है उसीका ध्यान हो सकता है क्योंकि सिद्धान्त यह है कि जहां पर ध्याता, ध्यान, ध्येय, यह तीन पदार्थ होते हैं वहां ध्यान होता है, क्योंकि यह वेदादि सच्छास्त्रों का सिद्धान्त है कि—

यतोवाचोनिवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसासह।
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति
न मनो न विद्मो न विजानीमो यथै-

तदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथोअवि-
दितादधि । इति शुश्रुम धीराणां येनस्त-
द्विचचक्षिरे ॥

जहां पर वाणी मनके साथ न प्राप्त होकर लौट आती है, न वहां चक्षुकी गति है, न वाणी जाती है, न मन जाता है, हम उसको नहीं जानते न यह जान सकते हैं कि किस प्रकार उसका उपदेश किया जा सकता है वह ब्रह्म जाने हुये से जुदा ही है और नहीं जाने हुये से भी जुदा है इस प्रकार पूर्वाचार्यों से हमने सुना है जिन्होंने उसका व्याख्यान किया। तो इससे यह निश्चय हुआ कि निराकार का ध्यान हो ही नहीं सकता क्योंकि निराकार मनका विषय ही नहीं और जहां तक मन बुद्धि का विषय है वह सब देश तथा काल से परिवेष्टित है और इसलिये साकार ही है इसके सिवाय और भी उपनिषदोंके मन्त्र यहां दिखाये जाते हैं इनसे निराकार ध्यान का खण्डन होता है।

यद्वाचानाभ्युदितंयेनवागभ्युद्यते ।
तदेवब्रह्मत्वंविद्धिनेदंयदिदमुपासते ॥१॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥३॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥

इन सब प्रमाणों से भी परमात्मा के साकार पूजन का ही विधान प्रतीत होता है ।

इसके सिवाय यह भी जब प्रत्यक्ष देखने में आता है कि अग्नि सर्वव्यापक है तथा निराकार भी है पर जब हमें रोटी आदि बनाने की ज़रूरत पड़ती है तब साकार अग्नि ही से भोजन पकता है निराकार अग्निसे कुछ भी काम सिद्ध नहीं होता इसीतरह परमात्मा जो कि सर्वव्यापक तथा निराकार और साकार दोनों तरह का है उस के भी साकारांश का

पूजन हो सकता है निराकार में तो मन आदि की गति ही नहीं है।

यहां पर आर्यसमाजी यह शङ्का करते हैं कि जड़की पूजा करने से चैतन्य कैसे प्रसन्न हो सकता है सो प्रथम तो यह शंका ही निरर्थक है क्योंकि जड़ को तो पूजा की ही नहीं जाती है, क्योंकि मन्दिर में पूजा करने के लिये जाने वालेसे पूछिये तो वह यह कभी न कहेगा कि मैं पत्थर की पूजा करने जाता हूं किन्तु यही कहेगा कि मैं शिवजीकी पूजा करने जाता हूं या विष्णु भगवान्का पूजन करने जाता हूँ इसलिये जड़ की तो पूजा की ही नहीं जाती है पर अन्तःस्थित परमात्मा की अवश्य पूजा की जाती है।

तो अब इस बात में सन्देह नहीं रहा कि जड़ की पूजा करने से चैतन्य की पूजा नहीं हो सकती क्योंकि जब शब्दात्मक ओंकार से चैतन्य परब्रह्म की उपासना मानी जाती है जिसको कि प्रच्छन्न बौद्ध आर्यसमाजीभी मानतेहैं तो फिर इसी प्रकार मूर्त्ति में व्यापक परमात्मा की मूर्त्ति द्वारा उपासना करने में क्या बाधा हो सकती है ? अर्थात् कदापि नहीं, इस के सिवाय यह बात भी विचारणीय है कि ये आर्यसमाजी देवता शब्दसे विद्वान्का ग्रहण करते हैं और इसके लिये एक प्रमाण भी देते हैं (विद्वांश्सोहि देवाः) जो विद्वान् हैं

वे ही देवता हैं, अब यहां पर इन से यह प्रष्टव्य है कि आप लोग भी तो मांस मज्जा आदि जड़ पदार्थों से बने शरीर की पूजा करते हो और उसी से अजर अमर चैतन्य आत्मा को प्रसन्न करते हो यदि आत्मा का पूजन नहीं करते तो मरने के बाद भी पूजा करनी चाहिये तो यहां पर उन्हें यही कहना पड़ेगा कि हम जड़ शरीर द्वारा उसके भीतर व्यापक जीवात्मा का पूजन अर्चन करतेहैं तो बस, आगतोऽस्मदीयः पन्थाः। प्रतिमा पूजक भी तो अपने इष्टदेव की प्रतिमा द्वारा उस परमात्मा का ही पूजन अर्चन करते हैं जिन वेदमन्त्रों को या श्लोकादि स्तोत्रों का वे पाठ करते हैं, क्या उन में कहीं पाषाण या पीतल आदि का भी नाम आता हैं ? कहीं नहीं, किन्तु यही कहते हैं कि विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व जय २ करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ! यहां पर आर्यसमाजी यह शंका करते हैं कि जब तक तुम वेद मन्त्रों से परमात्मा सच्चिदानन्दरूप का पाञ्चभौतिक शरीर सिद्ध न कर लोगे तब तक तुम्हारा कहना ठीक नहीं क्योंकि प्रतिकृति या मूर्त्ति शरीर रहित की होनी असम्भव है।

इसका संक्षेप में समाधान यह है कि तुम अपने वा औरों के शरीरस्थ जीवात्माको शरीर रहित मानतेहो वा शरीर सहित

यदि शरीर रहित मानोगे तो (आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु) जीवात्मा को शरीर रूप रथका स्वामी जानो और शरीर को रथ जानो तथा "तयोरन्यःपिप्पलं स्वाद्वत्ति" उन दोनों में जीवात्मा स्वादु फल को खाता है। जीवात्मा का नाम शरीरी और देही भी सब शास्त्रों में लिखा मिलता है तो इत्यादि प्रमाणानुसार जीवात्मा को शरीर रहित तुम कदापि नहीं मान सकते और यदि मानोगे तो शरीर सहित किसको मानोगे। क्योंकि ईश्वर वा आत्मा से भिन्न सब प्रकृति वा जड़ जगत् हैं अब यदि शरीर सहित माना तो न जायते म्रियते वा कदाचित्" जीवात्मा न कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है इस दशा में शरीर सहित कैसे ठहराओगे ? सब दशा में तुम को यह बतलाना चाहिये कि तुम शरीर सहित जीवात्मा की मूर्त्ति कैसे बना लेते हो ?। क्योंकि जब तुम्हारे मत में शरीर रहित का प्रतिबिम्ब होना असम्भव है तो शरीर सहित की प्रतिकृति होना अर्थापत्ति से तुम्हारे मत में सम्भव हो गया तुम बता सकते हो कि जैसी स्वा० द० की प्रतिकृति तुम्हारे पास है क्या स्वा० दयानन्दजी का जीवात्मा ठीक वैसाही था, यदि कहो कि यह तस्वीर तो शरीर की है आत्माकी तस्वीर तो बन ही नहीं सकती क्योंकि आत्मा तो

अदृश्य है तो ठीक है हम भी ऐसा ही मानते हैं ईश्वर वा देवताओं के शरीर की तस्वीर बनती है आत्मा की नहीं, यदि कहो कि वेद में ईश्वर को जन्म ले शरीर धारण करना नहीं लिखा तो सो ठीक नहीं वेदमें हम ईश्वर का जन्म लेनां शरीर धारण करना दिखलाते हैं देखो यजु० अ० ३२।

एषोहदेवःप्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वोहजातः
सउगर्भेअन्तः। सएवजातःसजनिष्यमाणः
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः ॥ १ ॥

यह जो पूर्वोक्त पुरुष ईश्वर सब दिशा विदिशाओंमें नाना रूप धारण कर ठहरा हुआ है वही पहिले सृष्टिके आरम्भ में हिरण्यगर्भरूप से उत्पन्न हुआ और वही गर्भमें भीतर आया वही उत्पन्न हुआ और वही उत्पन्न होगा जो कि सबके भीतर अन्तःकरणों में ठहरा हुआ है और जो नानारूप धारण करके सब ओर मुखों वाला हो रहा है। और भी देखो-

आयोधर्माणिप्रथमःससादततोवपूंषि
कृणुषे पुरूणि। अथर्व० ५। १। १। २।

हे ईश्वर ? जिन आपने प्रथम सृष्टिके आरम्भमें सब धर्मों को स्थापन किया उन्ही आपने बहुत से वपु नाम शरीर अवताररूप से धारण किये हैं। वपुनाम शरीर का संस्कृत में प्रसिद्ध है। तथा–

एह्यश्मानमातिष्ठाश्माभवतुतेतनूः ।

अथर्व० २ । १२ । ४

हे ईश्वर ? तुम आओ और इस पत्थरकी मूर्त्तिमें स्थित होओ और यह पत्थर की मूर्त्ति तुम्हारा तनु नाम शरीर बन जावे अर्थात् शरीरमें जीवात्मा के तुल्य इस मूर्त्तिमें ठहरो इस की पुष्टिमें उपनिषद् तथा ब्राह्मण भागादि के सैंकड़ों प्रमाण मिल सकते हैं।

यः पृथिव्यां तिष्ठन् यः पृथिव्या अन्तरो
यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवीशरीरम्।
यः पृथिवीमन्तरो यमयति ।

अर्थ–जो पृथिवी में ठहरा हुआ भी पृथिवी से भिन्न है जिसको पृथिवी नहीं जानती जिस का पृथिवी शरीर है जो पृथिवी के भीतर रहता हुआ उस को ठीक ठीक नियम में

थामे हुए है। इत्यादि वेदप्रमाणों से परमात्मा का शरीर-धारित्व सिद्ध होता है ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

वही अग्निरूप वही आदित्य वही वायु वही चन्द्रमा और वही जलरूप है अग्नि आदि उस के नाम हैं रूप नहीं यह कल्पना युक्ति विरुद्ध है कि जिस के नाम अनेक हों रूप अनेक न हों, तो अभिप्राय यह निकला कि शरीर से शरीरीकी पूजा अंगसे अंगी की पूजा आधार से आधेयकी पूजा अधिष्ठान से अधिष्ठित की पूजा युक्तिसिद्ध है।

प्रतिमा पूजक भी तो अपने इष्टदेवकी प्रतिमा द्वारा उस परमात्मा का ही ध्यानादि द्वारा पूजन अर्चन करते हैं। पाषाण धातु आदि की प्रतिमा की स्तुति प्रार्थना नहीं करते किन्तु परमात्मा की ही उपासना करते हैं ॥

अब रहा यह कि जड़ में चैतन्य की भावना नहीं बन सकती? इसके उत्तर में निवेदन है कि जो वेदादि शास्त्रों को विचार पूर्वक देखा जाय तो यह सारा जगत् ही भावना मात्र है। प्रथम उस परमात्मसत्ता में ही 'एकोऽहम्, रूप भा-

बना उत्पन्न होने से सारा जगत् रचा गया। और जीवात्मा का जड़ शरीर के संग सम्बन्ध होने से शरीर के छोटे बड़े बाल वृद्ध आदि दशायुक्त होने से जीव को अपने छोटे बड़े बाल वृद्ध आदि होनेकी भावना होती है क्योंकि बिना जीवात्माके सम्बन्ध के जड़ शरीर बाल वृद्ध हो नहीं सकता॥

और शोचिये एक लड़की है जिसका विवाह नहीं हुआ उसको सर्वसाधारण मनुष्य तथा उस के माता पिता भी कन्या जानते मानते हैं और कन्या भी किसी में पति की भावना नहीं रखती। परन्तु जब उस कन्या का शास्त्रीय विवाह होता है और पुरुष में वेदमन्त्रोंके उच्चारणद्वारा पतिभाव स्थापित किया जाता है और उस लड़की में विवाहित पुरुषका पत्नीभाव हो जाता है। यह भाव इन दोनों में आपस में पति पत्नी रूप से होकर ही नहीं रह गया वरन पुरुष के माता पिता उस लड़की के सास ससुर हो गये यहां तक कि एक के सम्बन्धी मात्र में दूसरे को भी सम्बन्धीभाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार एक पतिपत्नी भावना के होते ही सहस्रों स्त्री पुरुषों में सम्बन्धी भावना हो जाती है। यह पतिपत्नी भावना ऐसी दृढ और सत्य होती है कि सनातनधर्मियों में यह भावना जन्मान्तर में भी प्रभाव रखती है

और इसी भावना के प्रभाव से स्त्रियों में पातिव्रत धर्म इस देश का प्रख्यात है और इस जन्म में भी जो स्त्री अन्य पुरुष के संग कुव्यवहार रक्खे तो लोकनिन्दा होती है और उसी व्यवहार को पतिपत्नी के मध्य होनेसे धर्म ही माना जाता है इसी प्रकार गुरु शिष्य पिता पुत्र आदि सहस्त्रों भावना संसार का बन्धन रूप और मनुष्य कल्पित भावना हैं परन्तु परमात्मा जो सर्व पदार्थों में परिपूर्ण है और पाषाणादि में पाषाणादि रूप से विद्यमान है।

रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च

आदि में किसी अन्यरूप से नहीं है तो पाषाणादि की प्रतिमा में भी प्रतिमा रूपसे वही विद्यमान होने से प्रतिमा में परमात्माकी सत्यभावना क्यों न रक्खी जाय जबकि वेदमें ही

नमः सिकत्यायचप्रवाह्यायचनमः-

किंशिलायच ॥ यजु०

मन्त्र में रेती नदी प्रवाह तथा कंकड़ आदि को नमस्कार किया है जब वेद में ही इन रेती प्रवाह तथा कंकड़ आदि जड़ पदार्थों को नमस्कार किया तो यदि प्रतिमा द्वारा इष्टदेव को नमस्कार किया जाय तो क्या हानि है। ऐसे ही उपनिषदों में ओंकार की

अ, उ, म, मात्रा में जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीनों जीवात्मा की अवस्थाओं की भावना का वर्णन है तथा—

तंयथायथोपासते सतथातथाभवति। श्रुतेः
येयथामांप्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्॥

आदि प्रमाण से उस परमात्मा की जिस २ भावसे उपासना करते हैं वह उसी २ भाव से प्राप्त होता है। इसीलिये कहते हैं कि प्रतिमा में जो परमात्माकी भावना है वह कल्याणकारी है संसारी सम्बन्ध भावना की तरह बन्धनका हेतु नहीं वरन् यह भावना मट्टी के विकार घट शरावादि में मिट्टी की भावनावत् जगत् में परमात्मभावना सत्य ही है।

व्याससूत्र—ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ सू० ४।१।५ में भी प्रतीक में ब्रह्मदृष्टि को ब्रह्म से श्रेष्ठ होने से सत्य ही कहा है। प्रच्छन्न नास्तिकोंका यह भी आक्षेप है कि वेद में परमात्मा की प्रतिमाका इस वाक्य से निषेध है कि 'न तस्य प्रतिमाअस्ति यस्य नाम महद्यशः, अर्थात् जिस का नाम महत् यश है उसकी प्रतिमा नहीं है। इस मन्त्र में महत्‌यश और प्रतिमा में यह सम्बन्ध है कि जिसका यश बड़ा है उस की प्रतिमा नहीं है अर्थात् यश वाले की प्रतिमा नहीं होती

यह अर्थ हो सकते हैं परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं क्योंकि लौकिक में भी बड़े यश वाले की ही प्रतिमा बनाई जाती है जैसे भरतखण्डकी राजराजेश्वरी क्वीन विक्टोरियाकी कीर्ति और यश के बड़े होने से कुछ वर्ष प्रथम श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्स श्रीमती की मूर्तियों के स्थापन करने की क्रिया कर गये थे तो फिर मन्त्रमें प्रतिमा के मूर्ति वा प्रतिकृति अर्थ ठीक नहीं होते और जो पुराने ऋषि आदिकों ने प्रतिमा का अर्थ तुल्य के कर यह अर्थ किया हैं कि जिस परमात्मा का यश बड़ा है उसके समान कोई नहीं है। और ये ही अर्थ घटित भी होता है इन प्रच्छन्न नास्तिकों की रीति से हम भी अपने मतलबको सिद्ध करनेके लिये धींगाधींगी अर्थ करने लगें तो इसी मन्त्रसे प्रतिमापूजन सिद्ध करते हैं। उस बड़े यश वाले की 'जिसको नमस्कार किया जाता है, प्रतिमा है। यह अर्थ भी बहुत ठीक ही है और परमात्माका यश भी बड़ा है और संसार भरके सब मतानुयायी परमात्माको कायिक वाचिक मानसिक रीति से नमन करते रहते हैं और नमन उस को किया जाता है जिस का बड़ा यश है हमारा यह काम नहीं कि सनातनीय अर्थ जो निरुक्तादिसे सिद्ध होते हैं और जिन अर्थोंकी साक्षी श्रुति स्मृति शास्त्रोंसे होती है उनको बिगाड़

कर अर्थ का अनर्थ करें हां जो हमको वेदमन्त्रों के वास्तविक अर्थोंको समयानुकूल करने और आज कलकी प्रचलित पदार्थविद्या की उत्पत्ति वेदसे ही सिद्ध करने तथा ईसाई मुसलमान आदिके सनातनीय धर्म प्रतिमा पूजन श्राद्ध आदि परके आक्षेपोंसे बचाने की नियत से वेद प्रतिपाद्य धर्म को ही वेद विरुद्ध कहना और वेदादि शास्त्र वर्णित कर्म परिपाटी को स्वरूच्यनुकूल करनेके हेतु कपोलकल्पित पद्धति गढ़ना आदि अभीष्ट हो तो 'तरुतार, से रेल तार तथा एकश्चद्वि० आदिसे वीज गणित त्रिकोण, मिति, आदि 'एकादशंपति, से ग्यारह पतिकी विद्याकी उत्पत्तिकी तरह और वेद मन्त्रोंके अर्थोंकी खेंचातानी करनी पड़े और सनातनीय आम्नाय के अर्थ की पुष्टि वाली श्रुति स्मृति आदिको परतःप्रमाण तथा क्षेपक बताकर पोपलीला कहनी पड़े। जब सनातनीय रीत्या शास्त्रादिसे किये हुए वेदके अर्थ सिद्ध हैं तो उन परम्परागत अर्थों के प्रतिकूल अर्थों का शास्त्रानुगत सिद्ध करने का भार हमारे च्छिन्ननास्तिकों के ही शिर पर है। इसलिये इस विषय में हमको कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं परन्तु आप के सामने वेदके थोड़े से मन्त्रों से यह दिखाया जाता है कि वेद में प्रतिमा ही शब्द नहीं आया वरन वपु, तनु, मूर्ति, आदि भी शब्द उसी अर्थ में आये हैं।

सहस्रस्यप्रमासिसहस्रस्यप्रतिमासिस-
हस्रस्योन्मासि सहस्रायत्वा ॥ यजु० १५ । ३५

[सहस्र यष्टिकाओं का तू प्रमाण है सहस्र की प्रतिमा है सहस्र का उन्मान है सहस्राहं है सहस्र फल देने वाला है]

यातेरुद्रशिवातनूरघोरापापकाशिनी ॥
यजु० १६ । २ व ४९ ॥

[हे रुद्र तेरा शरीर कल्याण करने वाला है सौम्य है और पुण्य फल देने वाला है]

आदित्यंगर्भंपयसासमङ्धिसहस्रस्य
प्रतिमांविश्वरूपम् ॥ यजु० १३ । ४० ।

आदित्य को पयमें स्थापित करे वह आदित्य कैसा है वह विश्वरूप सहस्रों की प्रतिमा है इन मन्त्रों से यह सिद्ध हुआ कि वेद में प्रतिमा शब्द मूर्ति अर्थ में भी है अब यह दिखाते हैं कि यज्ञ उस प्रजापति परमात्मा की प्रतिमा है तथा अन्न भी उस की मूर्ति है और यज्ञ साधन सामग्री भी उस प्रजापति यज्ञरूप देवता स्वरूप की प्रतिमा है ॥

अथैतमात्मनः प्रतिमामसृजतयद्यज्ञं

तस्मादाहुः प्रजापतिर्यज्ञ इति आत्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत ॥ शत० ११ । १ । ८

[प्रजापति ने इस यज्ञको अपनी प्रतिमा बनाया इस से कहते हैं कि प्रजापति यज्ञ है उसने अपने तईं प्रतिमा बनाया]

सोऽपोऽभ्यतपत् । ताभ्योऽभितप्ताभ्यो-मूर्त्तिरजायत । या वै सा मूर्त्तिरजायतान्नं वै तत् ॥ ऐ० उ० १ । ३

[वह आप के अर्थ तप करता हुआ । इस तपते हुए से मूर्त्ति उत्पन्न हुई वह जो मूर्त्ति उत्पन्न हुई वह अन्न हुआ]

अतः शाखाशम्योपवेशकपालेध्मोलूखलादयश्च प्रतिमाभूता इति ॥

अतः शाखादि अचेतन यज्ञ साधन सामग्री उस यज्ञरूप प्रजापति की प्रतिमा है] क्योंकि व्यासमूत्र (अभिमानि व्यपदेशत्वेति) से इन साधन सामग्री के अभिमानी देवता होने से इस की चेतनवत् स्तुति की जाती है । (मृदब्रवीदापोऽब्रुवन्निति) श्रुतिमें [मिट्टी ने कहा जल ने कहा] मिट्टी

और जल के अभिमानी देवता न मानें जायं तो मिट्टी और जल का बोलना नहीं हो सकता। इसी प्रकार इन मन्त्रों में भी पत्थर की स्तुति की गई है।

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ॥ ऋ० ९। ६। १३ २।

[ऋत्विक्गण स्तुति करें हम स्तुति करें, तुम भी स्तवनीय पाषाण देवता की स्तुति करो]

स मध्यंदिने मध्यंदिन एवोपादासर्पद्ग्राव्णोऽभिष्टौति ॥ ऐ० ब्रा० २६। १

इत्यादि मन्त्रोंमें पाषाणकी स्तुति है। इस स्तुति से यह तात्पर्य नहीं है कि जड़ पदार्थ पाषाणकी स्तुति हो वरन् पाषाणादि के भीतर व्यापक एक परमात्मशक्ति की ही स्तुति है तो फिर कहिये पाषाणादिकी प्रतिमा द्वारा उस परमात्मा की स्तुति प्रार्थना तथा उपासना क्यों नहीं होती॥ अब आगे वेदके मन्त्रोंसे प्रतिमा बनानाभी दिखाते हैं॥ यथा—

देवीद्यावापृथिवीमखस्य वामद्यशिरो-राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय-

त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ यजु० ३७ । ३

[हे दीप्यमान ! आकाश और पृथिवी ! आज मैं यज्ञका शिर सिद्ध करता हूं । हे पृथिवी ! यज्ञके लिये तुझे लेता हूं यज्ञ के शिर के लिये तुझे लेता हूं इस मन्त्र की पुष्टि शतपथ ब्राह्मण में—

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति देवी द्यावा पृथिवी इति ॥

इसी प्रकार कल्पसूत्रमें भी लिखा है कि 'देवीद्यावा' मन्त्र से मिट्टी को ग्रहण करे,

इयत्यग्रऽआसीन्मखस्य तेऽद्य शिरोराध्यासम् । यजु० ३७ । ५ ।

हे पृथिवी ! पूर्व तूं प्रादेशमात्र थी उस तुझ को आज यज्ञ के शिरके अर्थ लेता हूं

अथ वराहविहृतम् । इयत्यग्रऽआसीदितीयती हवाऽइयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्रीतामेमूष इति वराह उज्जघान

सोऽस्याः पतिः प्रजापतिः ॥ शत० १४ । १ । २ । १७

[इयत्यग्र० मन्त्रको पढ़कर सूकर की खोदी हुई मिट्टीको लेवे यह पृथिवी पहिले प्रादेशमात्र थी उस को वाराह ने उद्धृत किया वही इस पृथिवी का पति प्रजापति है ।

इस यजुर्वेद के मन्त्र शतपथ ब्राह्मणकी श्रुति और कल्प- सूत्र तीनों को देखनेसे बीज में वृक्षवत् छिपे वराह अवतार- रूप पेड़ को ही अङ्कुरित कर दिया है। इसी प्रकार वेद मन्त्र ब्राह्मण श्रुति तथा कल्पादि सूत्रों को मिला कर देखा जाय तो परमात्माके सर्व अवतारोंका पता लगता है ॥

अथ मृत्पिण्डमुपादायमहावीरं करोति मखायत्वा मखस्य त्वाशीर्ष्णे । प्रादेश- मात्रं प्रादेशमात्रमिव हि शिरोमध्ये सं- गृहीतम्, मध्ये संगृहीतमिव हि शिरोऽ- थास्योपरिष्टात् त्र्यङ्गुलमुखमुन्नयति नासिकामेवास्मिन्नेतद्दधाति तंनिष्ठित-

मभिमृशति मखस्य शिरोऽसीति ॥ शत०
१४ । १ । २ । १७

वांवी और वराह की खोदी मिट्टी के पिण्ड को लेकर 'मखायत्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे, मन्त्र पढ़कर प्रादेशमात्र लम्बे यज्ञरूप प्रजापतिके शिर महावीर को बनावे यह बीचमें संकोच रहे इस से तीन अंगुल ऊपर मुख बनावे और उससे ऊपर नासिका बनावे जब बन चुके तो 'मखस्य शिरोऽसीति मन्त्र पढ़ कर दहिने हाथ से स्पर्श करे इस मन्त्रमें महावीर का बनाना लिखा है परन्तु प्रच्छन्ननास्तिकों का कहना है कि 'महावीर के अर्थ यज्ञपात्र के हैं इस लिये इस मन्त्र से उस पात्र का बनाना ही दिखाया गया है न कि यज्ञरूप प्रजापति का शिर बनाना। महाशयो! यह उन का कहना ठीक नहीं है क्योंकि इस मन्त्र में ही महावीर को यज्ञ का शिर कहा है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि विष्णु ही यज्ञ पुरुष प्रजापति हैं इनका शिर अश्विनी कुमारों ने जोड़ा था और तब देवताओं ने इन को यज्ञ में भाग दिया इसलिये यज्ञ में विष्णु का शिर बनाया जाता है जिस को महावीर कहते हैं। जो इन लोगों का कहना ही थोड़ी देर के लिये

मानलें तो भी वह पात्र शुचिश्रुवाका सा नहीं वरन् जिसपर गोमय मधु दुग्ध आदि चढ़ाया जाय उस को पात्र कहते हैं और महावीर में आवाहन पञ्चामृत प्रोक्षण गन्ध पुष्प पूजन आदि करना श्रौत सूत्रों से स्पष्ट ही है जो शुचिश्रुवा आदि यज्ञ के पात्रों में नहीं होता इस हेतु से भी महावीर से यज्ञ-रूप प्रजापति के शिर की प्रतिमा ही जाननी चाहिये। तथा कं० १५ के आदि में महावीर को मनुष्याकार वनाना भी लिखा है। यथा-

अथ यदि पुरुषाकृतिं करिष्यन्स्यात्समानमायुधमस्योपावहरणात् अत्रैवेतरावपावहृत्य शिरसो रूपं करोति। अप्रच्छिन्नाग्रं वेदमुपरिष्टान्निदधाति शिखायारूपम्। अभितोदोग्ध्रेकर्णयोरूपम्। अभितोहिरण्यशकलावाज्यस्त्रुवौ वाक्ष्योरूपम्, इत्यादि—

[यदि पुरुषाकृति में बनाना चाहे तो तीनों महावीरोंको एकत्र कर प्रथम शिरोभाग का रूप बनावे। जिन का अग्र-

भाग कटा न हो ऐसे कुशाग्रों को शिखारूपमें ऊपर लगावे। दोनों दोग्ध्र को कानरूप लगावे। मस्तकमें सुवर्ण के दो टूंक वा घृत पूर्ण दो स्रुव आंख रूप लगावे इत्यादि] इस प्रकार सूत्र में स्पष्ट लिखा है कि नाक स्थानीय दो स्रुव रक्खे मुख प्रोक्षणी का बनावे आज्यस्थाली की ग्रीवा बनावे इस प्रकार सब अङ्गों को सिद्ध कर यज्ञरूप प्रजापति के शिर की मूर्त्ति प्रतिमा बनावे। इस प्रकार साकार प्रतिमा बनाने की पुष्टिमें वहीं शतपथ में लिखा है कि—

प्रजापतिर्वा एषयज्ञो भवति। उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषाकरोति. यदेवास्य निरुक्तंपरिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करोति। अथयत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳरूपं तदस्य तेन संस्करोति। सहवाऽएतꣳ सर्वं कृत्स्नं प्रजापतिꣳ संस्करोति य एवं विद्वानेतदेवं करोति॥ शत० १४। १। २। १८

(यह यज्ञ ही प्रजापति है प्रजापति के दो रूप हैं निरुक्त अनिरुक्त परिमित अपरिमित उसका जो परिमित रूप है उससे संस्कार किया जाता है। तूष्णीं हो कर उसके अनिरुक्त और अपरिमित रूपसे संस्कार किया जाता है सो यह इस प्रकार इस सम्पूर्ण निःशेष प्रजापति का संस्कार करता है जो ऐसा जानता है वह ऐसा करता है ॥

महाशय ! इस प्रकार वेद की श्रुतियों और कल्प सूत्रों से यज्ञ पुरुष के शिर की प्रतिमा बनाना दिखाया इसके विषय में विशेष हाल जानने के लिये यजुर्वेद का ३७ अध्याय शतपथ ब्राह्मण और श्रौत सूत्र को मिलाकर देखने की आवश्यकता है जिससे यह स्पष्ट होजाता है कि प्रतिमा किस प्रकार बनाई जाती है। पकाई जाती है पूजी जाती है। जब इस रीति से वेद में ही प्रतिमा विषयक प्रमाण मिलते हैं तो फिर यह कहना कि वेद में प्रतिमा पूजन नहीं अनुचित ही है और प्रच्छन्ननास्तिकों के लिये जो प्रतिमापूजन निषेध करते हैं यह कहना कि वे वेद की ओट में नास्तिकमत का प्रचार करते हैं बहुत ठीक है ॥

महाशय ! वेद से प्रतिमा पूजन सिद्ध कर अब आप के सामने यह निवेदन करने में आता है कि पूजा तो की जाय

जड़ पदार्थ की ओर प्रसन्न होवे दूसरा चैतन्य और उससे तीसरे को किस प्रकार हानि लाभ पहुंच सकता है वेदों में जहां 'अथातः काम्यानाम्, कह कर सकाम यज्ञादि कर्म अनुष्ठान वा उपासना का वर्णन है वहां की एकाध श्रुतियों से इसको सिद्ध किया जाता है। सामवेदके युद्ध प्रकरणमें शत्रु की सैन्य को नाश करने के अर्थ इस प्रकार प्रयोग लिखा है

हस्त्यश्वरथपदातीनांपिष्टमयीः प्रतिकृतीः कृत्वा पिष्टस्वेदथं स्वेदयित्वासर्षपतैलेनाभ्यज्य तासांक्षुरेणाङ्गान्यवदायाग्नौजुहुयादभित्वाशूरनोनुम इतिरहस्येनयत्रही शब्दोयावतांजुहोतिसर्वेनभवन्ति ॥ सामब्राह्मणे ६ । ३

हाथी घोड़ा रथ तथा पैदल सेना की पिट्ठी की प्रतिकृति बनावे पिट्ठी के जल से स्वेदन कर सरसोंके तेलसे आर्द्र कर उसके अंगों को छुरे से टूंक २ कर 'अभित्वाशूरनोनुम, ऋचामूलक रहस्य से जितनी सेना नाश करनी हो उतनी ही आहुति देवे इसप्रकार होम करनेसे सर्वसेना नष्ट हो जाती है

अथैकमनुष्याणामावर्तनथ्ं स्त्रिया वापुथ्ंसोवा । श्रवणेनव्रतमुपेत्यपूर्वैः प्रोष्ठपदैः पाथ्ंसुभिःप्रतिकृतिंकृत्वाप्राक् शिरसं पूर्वाह्णेदक्षिणाशिरसं इत्यादिअ-यन्तइन्द्रसोम, ब्राह्मणस्यदत्तएकामिति, क्षत्रियस्यैषप्रकोशइतिवैश्यस्य 'त्रिभोट-इन्द्रराधस, इतिशूद्रस्योद्वयन्तमसस्परि-इतिवासर्वेषाथ्ं सौवर्णीं प्रतिकृतिं कु-र्यात् ब्राह्मणस्यराजतीं क्षत्रियस्यौदुम्बरीं वैश्यस्यायसीथ्ं शूद्रस्यौदुम्बरीं वा सर्वे-षाम् ॥ सा० ब्रा० २ । ५ ।

दूसरे किसी पुरुष वा स्त्री के वशीकरण का प्रयोग। श्रवण नक्षत्र में व्रत का आरम्भ करे और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में पांसु की अभीष्ट पुरुष की मूर्ति बनावे और दिवस के पूर्व भाग में पूर्व को शिर कर मध्यान्ह में दक्षिण को शिर कर

सायंकाल में पश्चिम में तथा अर्द्धरात्रि में उत्तर को शिर कर उस मूर्त्तिके हृदय देश में बैठकर 'अयन्तइन्द्रसोम, साम से ब्राह्मणके लिये 'अदृत्तएकम्, साम से क्षत्रिय को 'एपप्रकोश, सामद्वारा वैश्य और 'त्रिभोटइन्द्रराधस, साम द्वारा शूद्र को तथा 'उद्वयन्तमसस्परि, साम को चारों वर्ण के वशीभूत करने के लिये जप करे। ब्राह्मण की मूर्ति सोने की बनावे क्षत्रिय की चांदी की वैश्य की तांवे की और शूद्रकी लोहेकी प्रतिकृति बनावे वा सब की उदुम्बर की ही बनावे। इत्यादि

महाशय! इन वेद मन्त्रोंसे आपको ज्ञात हुआ कि मिट्टीकी हाथी घोड़े आदि की मूर्ति को छुरे से काट वेदमन्त्रों द्वारा होम करने से शत्रु की फौज का नाश होना लिखा है और धातु की ब्राह्मणादि की मूर्ति बनाकर मंत्रों के जापसे जिन २ की मूर्ति बनाई गई थे, वे, वश किये जाते हैं तो इससे स्पष्ट सिद्ध है कि होम और पूजा आदि तो की गई प्रतिकृति की और फौज नाश हुई तथा तीसरा पुरुष वश हुआ। आप शोचिये कि एक को पूजा से दूसरा किस प्रकार प्रसन्न होकर उपासक के मनोरथ किस प्रकार सिद्ध करता है? इस लिये यह कहना ठीक और वेदानुकूल ही है कि प्रतिमा द्वारा जो परमात्मा की उपासना है वह प्रतिमा व्यापक एक

परमात्मा की ही उपासना है और उससे उपासक के मनोरथ सिद्ध होते हैं जो उपासक अधिकारी हो और यथावत् शुद्धभाव से उपासना की जाय ॥

महाशय ! वेदोंमें ऐसे भी स्थल उपस्थित हैं कि जहां उत्पात शान्तिका वर्णन है वहां पर प्रतिमाओं के कांपने हंसने रोने फूटने फटने नाचने आदि का वर्णन है।

'सपरं दिवमन्वावर्त्तेऽथयदास्यायुक्तानियानानिप्रवर्त्तन्ते देवतायतनानिकम्पन्तेदैवतप्रतिमाहसन्तिरुदन्ति नृत्यन्तिस्फुटन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्तिप्रतियान्ति नद्यःकवन्धमादित्येदृश्यते अश्वानां च वालधीष्वङ्गाराः क्षरन्ति इत्यादि ॥ षड्विंशब्राह्मणे-तथा यद्यर्चादह्यद्वानश्येद्वाप्रपतेद्वाप्रभज्येद्वासहसेद्वाप्रचलेद्वा इत्यादि । ऐतरेय ब्राह्मण—

महाशय ! यहां तक तो सनातनीय धर्म्म परम्परा गत प्र-

तिमा पूजन का मण्डन युक्ति तथा प्रमाणादि से आपके सामने निवेदन किया और प्रच्छन्ननास्तिकों के मुख्य २ आक्षेपों का उत्तर दिया परन्तु अब थोड़े में आप के सामने यह भी निवेदन करता हूं कि ये प्रच्छन्ननास्तिक लोग ही जड़ वस्तुओं को जड़ जान मान कर उपासना करते हैं।

स्वा० दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश की पांचवी आवृत्ति के समुल्लास १४ में मुसलमानी मत के खण्डन प्रकरण में लिखा है और मुसलमानोंसे कहा है कि जिनको तुम बुतपरस्त कहते हो वे भी उन मूर्त्तियों को ईश्वर नहीं कहते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं दयानन्द जी के उपर्युक्त लेख से स्पष्ट प्रकट है कि हिन्दु लोग मूर्त्तिपूजाके समय परमेश्वर की ही प्रार्थना उपासना करते हैं।

सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में (शौचसन्तोपतपः स्वाध्यायेश्वर०) इस योग सूत्र का अर्थ करते समय स्वामी दयानन्दजी ने लिखा है कि जब मनुष्य उपासना करना चाहे तो एकान्त देश में आसन लगाकर बैठे और प्राणायाम की रीति से बाह्य इन्द्रियों को रोक मन को नाभि देश में रोके वा हृदय कण्ठ नेत्र शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में मन को स्थिर करे। साकार हड्डी आदि में मन कैसे स्थिर होगा

यह तो स्वा० दयानन्द ही जानें, पर हमारी रायसे यदि स्वा० दयानन्द ध्यान से विचारते तो शायद हड्डीसे अधिक अपवित्र तो मूर्त्ति को न मानते, इस हड्डी पूजा से तो मूर्त्तिपूजा अच्छी है।

सत्यार्थ प्रकाश आवृ० ०६ पृ० २७ पं० ४ में स्वा० दयानन्द ने सूर्यादि ग्रहों को जड़ लिखा है और प्रकाशादि से भिन्न अन्य कुछ न करने वाला कहा है और अहरहः सूर्यार्घ देने वाले सनातनधर्मियों को मिथ्या विश्वासी अन्धमति आदि कटु शब्दों से स्मरण किया है। परन्तु स्वयं संस्कारविधि आवृ० ५ निष्क्रमण प्रकरण पृ० ६३ में (यददश्चन्द्रमसि०) मन्त्र से चेले चेलियों को चन्द्रार्घ देने की शिक्षा दी है, नहीं मालूम स्वा० दयानन्द जी के अनुयायी इस आदेश का कहां तक पालन करते हैं या इसे भी पोप लीला समझते हैं।

अब लीजिये चलते चलाते छुरेका पूजन भी देख लीजिये संस्कार विधि आवृ० ५ चूड़ा प्र० पृ० ६८ में लिखा है कि थोड़ा जल माखन दही मलाई लेके (ओं अदितिं श्मश्रु०) (सविता प्रसूता०) इन मन्त्रों को बोलके बालक के शिर के बालों को तीन बार भिगोवे तत्पश्चात् केशों को इकट्ठा करे और (ओषधे त्रायस्वैनं मैनं हिंसीः) हे कुश! इस बालक

की रक्षा करो इसे मत मारो इस मन्त्र द्वारा तीन दभ लेके दाहिनी वाजू के केशोंको हाथ से दवाके (ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि) हे छुरे तू विष्णु की डाढ़ है और हे छुरे तू इस को मत मार यह कहे।

धन्य है कहिये डाढ़ वाला साकार होता है या निराकार और छुरे से प्रार्थना करना कहां तक उचित है यह भी विचारिये, यदि नाई की प्रार्थना करते तो ठीक भी था जड़ छुरा क्या रक्षा करेगा। फिर संस्कारविधिकी पञ्चमावृत्ति पृ०१८१ वैश्वदेवविधि में आप लिखते हैं कि सानुगायेन्द्राय नमः। इससे पूर्व में, मरुद्भ्योनमः। इससे द्वार में, अद्भ्योनमः। इससे जल में वनस्पतिभ्योनमः। इससे ओखली मूसल में वलि रक्खे, क्या यह उपर्युक्त देवता उन २ स्थानों में से वलि को खा जाते हैं ? या पूर्वादि दिशायें तथा ओखली मूसल ही हजम करजाते हैं, इन जड़ वस्तुओंके आगे वलि रखनेमें कोई सङ्कोच नहीं, हां परमात्ममूर्त्ति के सामने भोग रखना वुरा है ! क्या यही आशय है (खुदरांफज़ीहत दिगरां नसीहत)

ऊपर लिखे प्रमाणों से पाठक अच्छी तरह समझ गये होंगे कि मूर्त्तिपूजन के कट्टर विरोधी स्वामीदयानन्द जी की लेखनी भी कहीं २ साकारोपासना को लिख वैठी, इस का

कारण यह है कि कोई मनुष्य यदि किसी सत्य बात को असत्य सिद्ध करना चाहता है तथा तदनुकूल प्रयत्न करता है तो उसे अपने हृदय के विरुद्ध लिखने में बड़ी कठिनता आपड़ती है और दैवेच्छा वश वह कहीं २ ठीक बात भी लिख देता है। यही हाल स्वा० दयानन्द जी का हुआ कि वे जिस प्रबलता से मूर्त्ति पूजन का खण्डन करने के लिये सन्नद्ध हुए और सत्य को असत्य सिद्ध करनेके लिये जो पराक्रम किया वह सफल नहीं हुआ किन्तु खण्डन करते २ कहीं मण्डन हो गया आत्माके विरुद्ध लिखने वालोंका सदाही ऐसा दुष्परिणाम होता है।

किसी विषय को समझने के लिये यह आवश्यक है कि पहिले मनुष्य अपने धर्म शास्त्रों को देखे कि उनमें उसके विषयमें क्या प्रतिपादन किया गया है, क्योंकि "शब्दप्रमाणका वयं यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्" हम लोग शब्द प्रमाण के मानने वाले हैं वेदादि शास्त्रों में हमें जो कुछ कर्त्तव्याकर्त्तव्य बतलाया गया है वही हमारे लिये स्वीकर्त्तव्य है। द्वितीयं वेदादि शास्त्रों से किसी विषय के निश्चित हो जाने पर यह निर्धारणीय है कि मनुष्य अपने प्राचीन इतिहासोंको देखे कि हमारे पूर्वजों ने उक्त विषयमें कहां तक अपने विचारोंको

पुष्ट किया है अभिप्राय यह है कि प्रत्येक जाति को अपने २ पूर्वजों के माने और किये हुये धर्मका अनुसरण ही सर्वदा कर्त्तव्य है। व्यासजी लिख गये हैं कि "महाजनो येन गतः स पन्थाः" पूर्वज लोग जिस मार्ग से चलते रहे वही मार्ग श्रेय और अभीष्ट स्थान में पहुंचाने वाला है, भगवान् मनुजी ने धर्मका उपदेश करते हुए-

तेनयायात्सतांमार्गं तेनगच्छन्नरिष्यते।

इस श्लोकार्धद्वारा भी पूर्वोक्त अभिप्राय को व्यक्त किया है कि प्रत्येक मनुष्य को अपने पूर्वजों के सेवित सन्मार्ग से ही गमन करना श्रेयस्कर है जो लोग वेदादि शास्त्रोंके गम्भीर आशयों को समझने की योग्यता नहीं रखते उनके लिये यही श्रेयोऽनुष्ठान है कि वे अपने पूर्वज सेवित कार्यों को ही करें॥

तीसरा उपाय यह है कि विवेचनीय विषय में सामयिक वेदादि शास्त्राभिज्ञ विद्वानों की सम्मति और कर्त्तव्य पर अपनी दृष्टि प्रसारित करें कि वे उस विषय को कर्त्तव्य मानते हैं या अकर्त्तव्य, तथा उस से लाभ समझते हैं या नहीं। चौथा उपाय यह है कि विवेचनीय विषय को अपने मानस सरोवर में अच्छी तरह से परिप्लुत करें और देखे कि उस की प्रभा हृदय को कहां तक आकर्षित करती है जिन कर्मों

के करने में किसी तरह का भयादि प्रारम्भ में उपस्थित होता है और परिणाम में शान्ति प्राप्त नहीं होती और चित्तमें शङ्का रहती है समझना चाहिये कि वह कार्य हेय तथा अननुष्ठेय है, या जिन का आरम्भ काम क्रोध लोभ मोहादि विषय पञ्चक कर्त्तृक हों वे भी हेय तथा परिणाम में दुःख पहुंचाने वाले होते हैं ॥

सामान्य रीति से इस चार प्रकार की कसौटी में अच्छे बुरे कार्यों की परख की जा सकती है जिन के पास चारों प्रकार की कसौटी नहीं है वे किसी एक प्रकार की कसौटी से भी प्रत्येक हेय वा अकरणीय विषय का सम्यक् विवेचन कर सकते हैं ॥

यहां हम प्रतिमापूजन को पाठकों के सामने चार प्रकार की कसौटी रखकर परीक्षा करने के लिये प्रार्थना करते हैं, प्रतिमापूजन को जिस समय हम पहिली कसौटी में कसते हैं तो उसे नितान्त शुद्ध और शङ्कापङ्ककलङ्क शून्य पाते हैं क्योंकि वेद ब्राह्मण दर्शन उपनिषद् स्मृति श्रौत और स्मार्त्त सूत्र पुराण महाभारत, वाल्मीकीय रामायण आदि जो यावत् शास्त्र हैं उन सब ही से प्रतिमा पूजन की कर्त्तव्यता सिद्ध होती है, सब शास्त्र एक राय से प्रतिमा पूजन को कर्त्तव्य

और अनुष्ठेय धर्म समझते हैं, जिन में से सागर बिन्दुवत् वेदादि शास्त्रोंके प्रमाण मैंने इस ग्रन्थ में दिखाये हैं और कुछ यहां आगे भी दिखाता हूं ॥

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत । छन्दः किमासीत प्र उगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १८ मं० ३

अन्वयः । प्रश्नः-प्रमा का, परमेश्वरः कया प्रमीयते ?

उ०-प्रतिमया ।

प्र०=निदानं निर्माणकारणं किम् ?

उ०--आज्यं (प्राकट्यमात्रं यैः प्रतिमानिर्माणं कर्त्तुं शक्यते तैरेवकाष्ठपाषाणमृदादिभिः कुर्यात् ।

प्र०--परिधिः कः [परिधीयतेऽस्मिन्नि-

ति परिधिः] स्थानं कीदृशं स्यात् यत्र मूर्त्तिः स्थाप्या ? ।

उ०--छन्दः छादनात् छन्दः इति निरुक्त्या छादितं स्थानं स्यात् अन्तरिक्षे मूर्त्ति पूजनं न कार्यम् ।

प्र०--उ, वितर्के प्रगं गमनसाधनं यानं किम् ।

उ०--(यत्किमपि विमानरथगजतुरगनरादिकम्)

प्र०--देवा विद्वांसः देवं भगवन्तं किमुवथमयजन्त किं वाग्विषयंमत्वा पूजयन्ति

उ०--यत् यथा विहितं स्यात् ।

इस मन्त्र में प्रश्नोत्तर हैं एक पद प्रश्नरूप है और उत्तर पद उत्तररूप है ऐसे मन्त्रोंको वाकोवाक्य कहते हैं, इस तरह कई प्रश्न और कई उत्तर इसमें हैं प्रश्नोत्तर इस तरह हैं ॥

प्र०-परमेश्वर की प्रमा क्या है, (प्रमा शब्द यथार्थज्ञान का वाचक है जैसा कि तर्कसंग्रह में कहा है) (तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थः सैव प्रमेत्युच्यते) अभिप्राय यह कि परमेश्वर का यथार्थज्ञान किससे हो सकता है ॥

उ०-प्रतिमा-अर्थात् प्रतिमा से ही ईश्वर का, यथार्थज्ञान हो सकता है।

प्र०-प्रतिमा का कारण क्या है अर्थात् किस चीज की प्रतिमा बनानी चाहिये ॥

उ०-जो विहित हो काष्ठ पाषाण धातु प्रभृति की,

प्र०-कैसे स्थान में प्रतिमा रक्खे ?

उ०-छये हुए स्थान में अर्थात् खुले हुए स्थान में न रक्खे।

प्र०-मूर्त्ति का स्थानान्तर ले जाने में कैसा यान चाहिये ?

उ०-जो उत्तम हो अर्थात् रथ पालकी हाथी आदि।

प्र०-देवता लोग भगवान् का पूजन किस तरह करते हैं ?

उ०-यथाविहित अर्थात् कर्त्तव्यविधायक शास्त्रों में जैसी विधि लिखीहुई है उसी विधि से—

त्र्यम्बकंयजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्। यजु० अ० ३ मं० ६ ॥

तथा च निरुक्तम् । अ० १४ खण्ड ३५
त्रीणि अम्बकानि यस्य स त्र्यम्बको रु-
द्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे (सुगन्धिं) सुष्टु-
गन्धिम् (पुष्टिवर्द्धनम्) पुष्टिकारकमिवो-
र्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनात् मृत्योः
सकाशान्मुञ्चस्व मां कस्मादित्येषामितरै-
षा परा भवति ।

इस मन्त्र का महीधर ने भी यही भाष्य किया है इसका सीधा २ अक्षरार्थ यही है कि तीन नेत्रों वाले शिवजी की पूजा हम करते हैं सुगन्धित पुष्टिकारक पका खरबूजा जैसे अपनी लता से अलग हो जाता है, उसी तरह हम को मृत्यु से बचाकर मोक्षपद की प्राप्ति कराइये ।

यएषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृ-
श्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्
सर्वएव सुवर्णः । तस्य यथा कप्यासं पु-

पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्यउदितः। उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः ॥

सूर्य भगवान् भी एक ईश्वर की प्रतिमूर्त्ति है इस श्रुतिका भी यही अर्थ है कि यह जो आदित्यमण्डल में हिरण्मय पुरुष दीखता है जिसके सुवर्ण की सी डाढ़ी मूंछ और सुवर्णमय केश हैं जो नखों से लेकर सम्पूर्ण सुवर्णमय है उसके वन्दर के लाल २ चूतड़ों की तरह आंखें हैं वह सम्पूर्ण पापोंको दूर करे, सूर्य्य भगवान् में इस प्रतिमूर्त्ति के न देखने का कारण हम लोगों का अल्पशक्ति विशिष्ट होना है ॥

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव। त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५॥ अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते। तद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६॥

अर्थ-इन मन्त्रों का सीधा २ अर्थ यह है कि हे पशुपते! शिवजी तुम्हारे मुख को नमस्कार है। हे भवनाम शिवजी!

तुम्हारे तीन चक्षुओं को नमस्कार है। [सब प्राणियों के दो चक्षु होते हैं उनके लिये चक्षुषी] ऐसा द्विवचन बोला जाता है परन्तु यहां (चक्षूंषि) ऐसा तीन आदि संख्या में आने वाला बहुवचन शब्द मन्त्रमें कहा है इससे पुराणादि में लिखे तथा (त्र्यम्बकं०) मन्त्रमें कहे शिवजीके तीन नेत्र होने सिद्ध हैं। हे शिवजी आपकी त्वचा को नमस्कार है। तथा प्रत्यक्ष दीखने वाले तुम्हारे रूप को नमस्कार है। हे शिवजी वा रुद्रदेव! पश्चिममें रहने वाले तुमको नमस्कार है। हे रुद्रदेव तुम्हारे अंगों को नमस्कार है, हे रुद्र तुम्हारे उदर नाम पेट को और जिह्वा नाम जीभ को तथा तुम्हारे मुखस्थ ताल्वादि को नमस्कार है। तथा तुम्हारे शरीरसे निकलने वाले गन्ध को नमस्कार है। इन दो मन्त्रों में साफ २ साकार शिवको नमस्कार कहा है। वेद में ऐसी साफ २ साकार की पूजा होने पर निराकार की पूजा का दावा महा मिथ्या है। नमः पद का अर्थ है कि प्रणाम करना, पंचोपचार तथा षोडशोपचार पूजन में नमस्कार करना भी एक प्रकार की पूजा है। अमरकोषादि में लिखे (मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः) के अनुसार शरीर भी मूर्त्ति है उस की पूजा करना भी मूर्त्तिपूजा है। यदि कोई समाजी महाशय कहें वा हठ करें कि हम उक्त दोनों

मन्त्रों का अर्थ किसी मनुष्य पर लगावेंगे कि हे मनुष्य तेरे मुख को नमस्कार है तो मनुष्य के दो ही आखें होती हैं पर मन्त्रमें (चक्षूंपि) बहुवचन कहा है सो देवोंमें भी एक शिवजी ही तीन आखों वाले हैं तिस से मनुष्य में मन्त्रार्थ किसी प्रकार भी नहीं घट सकता। और द्वितीय इसी बात को पुष्ट करनेके लिये उक्त दो मन्त्रोंसे पूर्व उसी प्रकरणमें मन्त्र ३ देखो

नमस्ते रुद्र कृण्मःसहस्राक्षायामर्त्य॥३॥

अर्थ-हे अमर्त्य नाम मनुष्य से भिन्न रुद्रदेव! सहस्राक्ष नाम रूप आपको हम नमस्कार करते हैं। यहां मनुष्य का निषेध कर देनेसे मनुष्य अर्थ नहीं लिया जा सकता। तब सिद्ध हुआ कि साकार नाम मूर्त्तिमान् शिवजी की पूजा वेद में विद्यमान है। वेदमें साकार देवपूजा के हजारों प्रमाण हैं उनमें से यहां केवल नमूना मात्र दिखा दिया है। वेद में विष्णुके अवतारों का भी वर्णन है उसी से रामकृष्णादि भगवान् के विग्रहों का पूजन भी सिद्ध है। अब आगे मनुस्मृति के प्रमाणों से भी सब वर्णों वा आश्रमों के लिये मूर्त्तिपूजा दिखाते हैं। उन में प्रथम ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णके ब्रह्मचारियों के लिये, मनु जी अ० २। १७५ में लिखते हैं कि—

सेवेतेमांस्तुनियमान् ब्रह्मचारीगुरौवसन् ।

गुरुकी सेवा शुश्रूषा करता हुआ द्विज ब्रह्मचारी आगे लिखे कामोंका नियमसे सेवन करे अर्थात् नित्य करे-उन नियमोंमें से सबसे पहिले तीन कामोंको नियमसे करनेके लिये मनुजी कहते हैं कि—

नित्यंस्नात्वाशुचिःकुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्
देवताभ्यर्चनंचैव समिदाधानमेवच ॥१७६॥

नित्यप्रति स्नान करके प्रथम देव, ऋषि तथा पितरोंका तर्पण अपने गृह्योक्त विधि से करे, तदनन्तर शिवादि देव प्रतिमाओंका अभ्यर्चन नाम सम्मुख पूजन करे तिसके बाद विधिपूर्वक समिदाधान कर्म करे। यहां देवताभ्यर्चन पदसे माता पिता गुरु आदि किसी मनुष्यका आदर सत्कार इस लिये नहीं लियां जा सकता कि इसी मनुके द्वितीयाध्याय में माता पिता गुरु आदि मान्योंकी पूजा, आदर, सेवा पृथक् २ कही है। अग्निहोत्रका विधान सस्त्रीक गृहस्थके लिये है, अग्निहोत्रके स्थानमें ब्रह्मचारीके लिये समिदाधान कर्म है। पाणिनीय अष्टाध्यायी अ० ५ पा० ३। सू० ९९ के अनुसार

वासुदेव तथा शिवकी प्रतिमाओंका नाम भी कन् प्रत्ययका लुप् हो जानेपर वासुदेव तथा शिव ही होता है, इसीके अनुसार देवताकी प्रतिमा का नाम भी कन्का लुप् हो जानेसे देवता ही बोला जायगा। [वासुदेवस्य प्रतिकृतिर्वासुदेवः। शिवस्य प्रतिकृतिः शिवः। देवतायाः प्रतिकृतिर्देवता। तस्या-अभ्यर्चनं देवताभ्यर्चनम्] मनु में कहे देवताभ्यर्चन पदका स्पष्टार्थ विष्णु शिवादि देवोंकी प्रतिमाओंका पूजन ब्रह्मचारी को नियम से करना चाहिये यही सिद्ध होता है। यदि कोई आर्यसमाजी इस देवताऽभ्यर्चन पदका अन्य कुछ अर्थ सभा के बीच विद्वानोंके सामने करदे तो उसे १०००) रु० हम देंगे मनुके टीकाकारों की राय देवप्रतिमा पूजने की स्पष्ट है—

गोविन्दराजः—देवतानां हरादीनां पुष्पादिनार्चनम्। मेधातिथिः—अतः प्रतिमानामेवैतत्पूजनविधानम्। सर्वज्ञनारायणः-देवतानामर्चनं पुष्पाद्यैः। कुल्लूकः-प्रतिमादिषु हरिहरादिदेवपूजनम्

मनुस्मृति के टीकाकार पं० गोविन्दराज जी कहते हैं कि

यहां देवता शब्द से शिवादि देवता अभीष्ट हैं पुष्पादि से पूजन करना देवताभ्यर्चन कहाता है। मेधातिथि कहते हैं कि यहां प्रतिमाओं ही का पूजन अभिमत है, सर्वज्ञ नारायण और कुल्लूकभट्ट को भी यही मत स्वीकृत है। पाणिनीय अष्टाध्यायी-अ० ५।३।९९॥

जीविकार्थे चापण्ये, सूत्रस्योपरि-भाष्यम् यास्त्वेताः सम्प्रति पूजार्थास्तासु-भविष्यति। अत्र कैयटः-याः परिगृह्य गृहाद्गृहमटन्ति तास्वित्यर्थः॥

भाषार्थ-जो प्रतिमा जीविकार्थ हों पर बेंची न जावें उस अर्थमें कन् प्रत्यय का लुप् होता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि का अभिप्राय कैयट ने तथा तत्त्वबोधिनी टीकाकार ने यह दिखाया है कि जीविकार्थी लोग जिन देवी देवताओं की प्रतिमाओं को लेकर घर २ में दर्शन कराते हुये जीविका करते हैं उन प्रतिमाओं को बेंचते नहीं इस से वहां कनका लुप् हो जायगा। उक्त सूत्रपर सिद्धान्तकौमुदीकार ने लिखा है कि-

देवलकानां जीविकार्थासु देवप्रतिकृतिष्विदम्। तत्त्वबोधिनीकारः-याःप्र-

तिमाः प्रतिगृह्य गृहाद्गृहं भिक्षमाणा अटन्ति ता एवमुच्यन्ते देवलका अपि त एव भिक्षवोऽभिप्रेताः । यास्त्वायतनेषु प्रतिष्ठाप्यन्ते तासूत्तरसूत्रेण लुप्तदुक्तम् । अर्चासु पूजनार्हासु चित्रकर्मध्वजेषुच । इवेप्रतिकृतौलोपः कनोदेवपथादिषु । चित्रध्वजाभ्यां तद्गताः प्रकृतयो लक्ष्यन्ते । चित्रकर्मणि-अर्जुनः दुर्योधनः ध्वजेषु-कपिः, गरुडः, सिंहः । राज्ञांध्वजेषु सुपर्णसिंहमकरादयो भवन्ति ॥

भावार्थः—देवलक लोगों की जो मूर्त्ति जीविकार्थ होती है कि जिनको लेकर वे लोग घर २ भिक्षा मांगते हुए डोलते हैं वे ही प्रतिमा जीविकार्थ अपण्य हैं और वे ही भिक्षुक देवल कहाते हैं । अर्थात् मन्दिरों के पुजारियों का नाम देवल नहीं है । इसलिये मन्दिर के पुजारियों का श्राद्ध में मनु का कहा

निषेध नहीं है। संस्कृत के आयतन शब्द का अर्थ देवमन्दिर है। सामवेद की श्रुति (देवतायतनानि कम्पन्ते) यहां देव मन्दिरों का कांपना भी एक आश्चर्य दिखाया है। जो प्रतिमा देवमन्दिर शिवालयादि में स्थापित की जाती हैं। उन में (देवपथादिभ्यश्च । ५ । ३ । १००) पाणिनीय सूत्र से कन् प्रत्यय का लुप् होता है। प्रतिकृति वा प्रतिमा तीन प्रकार की होती है। एक तो सुवर्णादि धातुओं की वा पत्थरादि की बनी देव प्रतिमा जो मन्दिरादि में धर के पूजी जाती है उनका नाम अर्चा है वे ही मुख्य हैं। दूसरी दीवार पर खींचे चित्र वा कागज पर बने फोटो और तीसरी ध्वजाओं पर गरुड़ादि की प्रतिमा कि जो राजादिकी पताकाओं में होती हैं। इनमें पहिली प्रतिमाओं को ही पूजनार्ह कहा माना है, उन्हीं की पूजा ब्रह्मचारी के लिये मनुजी ने ऊपर कही है।

और गृहस्थ के प्रकरण में देखिये । मनु० अ० ४ । ३९ ।

मृदङ्गांदैवतंविप्रं घृतंमधुचतुष्पथम् ।

अर्थ-खुदी मट्टी, गो, देवता की प्रतिमा, ब्राह्मण, घी, मधु चौराहा, मार्ग में चलते समय ये आवें तो गृहस्थ पुरुष इनको प्रदक्षिणा करके जावे षोडशोपचार पूजन में प्रदक्षिणा भी पू-

जन है। यहां भी दैवतपद से सब टीकाकारों ने देवता की प्रतिमा ली है तथा मनु० अ० ४। १३०।

देवतानांगुरोराज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा। नाक्रामेत्कामतश्छायां वभ्रुणो दीक्षित-स्यच॥

मेधातिथिः-प्रतिकृतयोऽत्र देवता-स्तासां छायासम्भवात्। सर्वज्ञनारायणः देवतानां देवार्चानाम्। कुल्लूकः-देवता-नां पाषाणादिमयीनाम्। नन्दनः-देव-तानां देवताप्रतिमानाम्॥

भाषार्थः-गृहस्थ पुरुष देवतादि की छाया पर पग धरके न निकले यहां भी देवता पदका अर्थ ऊपर चार टीकाकारोंने देवताकी प्रतिमा लिखी है और भी देखो मनु० अ० ४। १५२

पूर्वाह्ण एवकुर्वीत देवतानांचपूजनम्।

अर्थ=गृहस्थ ब्राह्मणादि द्विजोंको पूर्वाह्णमें नाम मध्यान्हसे प-हिले देवताकी प्रतिमाओंका पूजन करना चाहिये। मनुजीके

कथनानुसार दक्षस्मृतिमें दिनके आठभागोंमें सब कर्मोंका विभाग करते हुए पूर्वाह्ण में देवपूजाका समय नियत किया है। तदनुसार आह्निक सूत्रावली आदि पुस्तकोंमें प्रातःकाल विधि पूर्वक शौच स्नान करके सन्ध्या अग्निहोत्र, वेदाभ्यासानन्तर ४ घड़ी दिन चढ़े बाद देवमूर्त्तियोंके पूजनका विधान लिखा है॥

दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्चद्विजोत्तमान्। ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु॥

मनु० अ० ४। १५३।

मनु जी कहते हैं कि गृहस्थ ब्राह्मणादिको चाहिये कि अमावास्यादि पर्व दिनोंमें प्रसिद्ध बड़े २ देव मन्दिरोंकी देव प्रतिमाओंके सम्मुख धर्मात्मा ब्राह्मणों के तथा राजा और गुरुके पास अपनी रक्षा के लिये दर्शनार्थ जाया करें और भी देखिये॥

सङ्क्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः॥

मनु० अ० ९-२८५

इस श्लोकमें मनुजी ने राजा के लिये आदेश किया है कि नालोंसे उतरनेके लिये जो पुल बने हुये होते हैं उनको

ध्वजयष्टि नाम तालावमें जो जल नापनेकी लकड़ी होती है उसको और देवताओं की प्रतिमा तोड़ने वालोंको राजा दण्ड देवे।

अत्रिस्मृतिमें लिखा हैं कि—

वापीकूपतड़ागानि देवतायतनानिच।
अन्नप्रदानमारामः पूर्त्तमित्यभिधीयते॥

बावली, कुंआं, सरोवर, देवताओंके मन्दिर, सदावर्त्त बाग वनवाना, इन सब कर्मोंको पूर्त्त कहा जाता है इससे साफ विदित होता है कि मनु आदि ऋषियों के समय मूर्त्ति पूजा एक नैत्यक कर्म माना जाता था देवताओंके मन्दिर बनवाना लोग अपना धर्म समझते थे प्रतिमाओंके तोड़ने वालों को दण्ड दिया जाता था। ऐसे प्रबल प्रमाणोंके रहते भी हठ धर्मको स्वीकार करके मूर्त्ति पूजाको वेदविरुद्ध कहना केवल लालवुझक्कड़ों ही का काम हो सकता है। स्वा० दयानन्द जी ने जिन ग्रन्थों को प्रामाणिक माना है उनमें से एक शुक्रनीति भी है इस शुक्रनीति के चतुर्थाध्यायमें शुक्राचार्य्य-जीने मन्दिर तथा मूर्त्तियोंके बनाने के नियम लिखे हैं तथा मूर्त्तियोंका परिमाण भी नाना प्रकारसे वर्णन किया है उस के केवल २ श्लोक यहां दिखाते हैं॥

एवंविधान्नृपोराष्ट्रे देवान्संस्थापयेत्सदा।
प्रतिसंवत्सरं तेषामुत्सवान्सम्यगाचरेत्॥

इस का आशय यह है कि राजा लोग अपने राज्य में मूर्त्तियों को स्थापित करें और प्रतिवर्ष उनका उत्सव करावें।

देवालयेनानहीनां मूर्त्तिंभग्नांनधारयेत्।
प्रासादांश्चतथादेवाञ्जीर्णानुद्धृत्ययत्नतः॥

अ० ४ श्लोक ५२१

देवालयोंमें टूटी फूटी मूर्त्ति को न रहने दे किन्तु राजा कों उचित है कि टूटे फूटे मन्दिर और प्रतिमाओंका संस्कार करता रहे।

इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि मूर्त्तिपूजा सर्वथा वेदानुकूल है तथा वैदिक मतानुयायियों का आन्हिक कर्त्तव्य है अब दो एक उदाहरण इस बात के और दिखाये जाते हैं कि हम लोगों के पूर्वज प्रतिमापूजन को ठीक मानते रहे और उन्होंने तदनुकुल आचरण भी किया, महाभारतके आदिपर्व में एक उपाख्यान उस समय का मिलता है जब कि हस्तिनापुर में द्रोणाचार्यजी पाण्डव और कौरवोंको अस्त्र शिक्षा दे रहे थे उनकी प्रशंसा सुन कर प्रतिदिन अनेकों क्षत्रिय उनके पास धनुर्वेद विद्या सीखनेके लिये आते थे।

ततोनिषादराजस्य हिरण्यधनुषः सुतः ।
एकलव्योमहाराज द्रोणमभ्याजगामह ॥
नसतंप्रतिजग्राह नैषादिरितिचिन्तयन् ।
शिष्यंधनुषिधर्मज्ञ-स्तेषामेवान्ववेक्षया ॥
सतुद्रोणस्यशिरसा पादौगृह्यपरन्तपः ।
अरण्यमनुसम्प्राप्य कृत्वाद्रोणंमहीमयम्
तस्मिन्नाचार्यवृत्तिञ्च परमामास्थितस्तदा
इष्वस्त्रेयोगमातस्थे परंनियममास्थितः॥
परयाश्रद्धयोपेतो योगेनपरमेणच ।
विमोक्षादानसन्धाने लघुत्वंपरमापसः ३५

महाभारत आदिपर्व अ० १३४

इस अध्यायके ३० श्लोकों में एकलव्य के चरित्रका वर्णन है, जब द्रोणाचार्यकी प्रशंसा दूर २ तक फैल गई तो एक दिन निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र एकलव्य द्रोण के पास धनुर्विद्या सीखने के लिये आया द्रोणाचार्य ने उसे शूद्र जान

कर धनुर्वेद की शिक्षा न दी तब वह मन में द्रोणाचार्य को गुरु मान कर और उनके चरणों को छूकर वन में चला गया और वहां द्रोणाचार्य की एक मट्टी की मूर्त्ति बना कर उसके सामने धनुर्विद्या सीखने लगा श्रद्धा की अधिकता और चित्त की एकाग्रताके कारण वह थोड़े ही दिनों में धनुर्विद्या में अच्छा निपुण हो गया, एक बार द्रोणाचार्यके साथ कौरव और पाण्डव मृगया खेलनेके लिये वनमें गये, उनमें से किसी के साथ एक कुत्ता भी गया था, वह कुत्ता इधर ऊधर घूमता वहां जा निकला कि जहां एक लव्य धनुर्विद्या सीख रहे थे, कुत्ता उनको देख कर भूंकने लगा तब एक लव्य ने सात तीर ऐसे मारे कि जिस से कुत्ते का मुंह बन्द हो गया वह कुत्ता पाण्डवों के पास आया, तब पाण्डवोंने इस अद्भुत रीति से मारने वाले को तलाश किया तो क्या देखते हैं कि एक लव्य सामने एक मट्टी की मूर्त्ति रक्खे हुए धनुर्विद्या सीख रहे हैं।

अर्जुन ने पूंछा महाराय! आप कौन हैं एकलव्य ने अपना नाम पता बताया और कहा कि हम द्रोणाचार्य के शिष्य हैं, अर्जुन द्रोणाचार्य के पास गये और कहा कि महाराज! आप ने तो कहा था कि हमारे शिष्योंमें धनुर्विद्या में तुम्हीं

सबके अग्रणी होगे परन्तु एकलव्यको आपने मुझसे भी अच्छी शिक्षा दी है, द्रोणाचार्य ने कहा कि मैं तो किसी भी एकलव्यको नहीं जानता चलो देखें कौन है, वहां जानेपर एकलव्यने द्रोणाचार्यका पदरज मस्तक पर धारण किया और कहा कि आपकी मूर्त्ति की पूजा से ही मुझे यह योग्यता प्राप्त हुई है आप मेरे गुरु हैं, द्रोणाचार्य ने कहा कि तो फिर हमारी गुरु दक्षिणा दो, एकलव्यने कहा कि आप जो कहें सो मैं देने को तय्यार हूं तब द्रोणाचार्य ने उसका अंगूठा दक्षिणा में मांगा और एकलव्य ने देदिया. अंगूठा न रहनेके कारण फिर एकलव्य में वैसी लाघवता न रही और द्रोणाचार्य की प्रतिज्ञा भी पूर्ण हुई। देखिये पाठक! द्रोणाचार्य की कल्पित मूर्त्तिके पूजन से ही एकलव्य अर्जुन से धनुर्विद्या में उत्कृष्ट हो गया था फिर जो लोग अहरहः देवपूजन करेंगे उनके कौन से मनोरथ सिद्ध न होंगे॥

अब वाल्मीकीय रामयण (जिसे संस्कृत साहित्य में आदिकाव्य होनेकी महिमा प्राप्त है) को भी देख लीजिये जिस समय मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी रावणादि राक्षसोंको मार कर पुष्पक विमान द्वारा लौटे तो सीताजी को उन्होंने उन २ स्थानोंका पता बताया कि जहां २ पर वे सीताजीके वियोगमें घूमते रहे थे रामचन्द्र जी कहते हैं कि—

एतत्तु दृश्यतेतीर्थं सागरस्यमहात्मनः ।
यत्रसागरमुत्तीर्य तांरात्रिमुषितावयम् ॥
एषसेतुर्मयाबद्धः सागरेलवणार्णवे ।
तवहेतोर्विशालाक्षि नलसेतुःसुदुष्करः ॥
पश्यसागरमक्षोभ्यं वैदेहिवरुणालयम् ।
अपारमिवगर्जन्तं शंखशुक्तिसमाकुलम् ॥
हिरण्यनाभंशैलेन्द्रं काञ्चनंपश्यमैथिलि ।
विश्रमार्थंहनुमतो भित्त्वासागरमुत्थितम् ॥
एतत्कुक्षौसमुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् ।
अत्रपूर्वंमहादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ॥
एतत्तु दृश्यतेतीर्थं सागरस्यमहात्मनः ॥
सेतुबन्धइतिख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ।
एतत्पवित्रंपरमं महापातकनाशनम् ॥

रामचन्द्रजी कहते हैं कि हे सीते ? यह समुद्र का तीर्थ दीखता है जिस जगह हमने एक रात्रिको निवास किया था,

यह जो सेतु दीखता है इसे नलकी सहायता से तुम्हें प्राप्त करने के लिये हमने ही बांधा था, जरा समुद्र को तो देखो जो वरुण देवका घर है कैसी ऊंची २ लहरें उठ रहीं हैं जिस का ओर छोर नहीं दीखता, नाना प्रकारके जल जन्तुओं से भरे और शंख और सीपों से युक्त इस समुद्रमेंसे निकले हुए सुवर्णमय इस पर्वतको देख जो हनुमान्‌के विश्रामार्थ सागर के वक्षस्थल को फाड़कर उत्पन्न हुआ है। यहीं पर विभु व्यापक महादेवजी ने हमें वरदान दिया था यह जो महात्मा समुद्र का तीर्थ दीखता है इसका नाम सेतुबन्ध है और तीनों लोकों से पूजित हैं यह परम पवित्र है और महापातकों को नष्ट करने वाला हैं, इन अन्तिम दो श्लोकों पर वाल्मीकीय रामायण के टीकाकार लिखते हैं—

सेतोर्निर्विघ्नतासिद्ध्यै समुद्रप्रसादानन्तरं शिवस्थापनं रामेण कृतमिति गम्यते कूर्मपुराणे रामचरिते तु अत्रस्थाने स्पष्टमेव लिङ्गस्थापनमुक्तं त्वत्स्थापितलिङ्गदर्शनेन ब्रह्महत्यादिपापक्षयो भवि-

ष्यनीति महादेववरदानं च स्पष्टमेवोक्तं सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहतीति स्मृतेः ॥

सेतु निर्विघ्न पूर्ण हो एतदर्थ रामचन्द्रजी ने समुद्रप्रसादानन्तर यहां शिवमूर्त्ति का स्थापन और पूजन किया था, कूर्मपुराण में तो इस प्रकरण में रामचन्द्र जी का लिङ्गस्थापन और महादेवजीके वरदान का स्पष्ट वर्णन है तुम्हारी स्थापित की हुई शिवमूर्तिके दर्शन करने से ब्रह्महत्यादि पापों का क्षय होगा, और स्मृति में भी लिखा है कि समुद्र का सेतुदर्शन करने से महापातकों का नाश होता है ॥

महाराज दशरथ जिस समय रामचन्द्र जी के वियोग में मृत्युङ्गत हो गये थे तव भरत जी अपनी ननसाल में थे उनके बुलाने के लिये दूत भेजा गया जिस समय भरतजी अयोध्या के समीप पहुंचे तो उन्हों ने अनेक अशुभ चिन्ह देखे वे कहते हैं—

देवागाराणिशून्यानि नभान्तीह यथापुरा।
देवतार्चाःप्रविद्धाश्च यज्ञगोष्ठास्तथैवच ॥

देवताओं के मन्दिर सूने दीखते हैं आज वैसे शोभायमान नहीं हैं जैसे पहिले थे, प्रतिमायें पूजा रहित हो रही हैं उनके ऊपर धूप दीप पुष्पादि चढ़े नहीं दीखते यज्ञोंके स्थान भी यज्ञकार्य से रहित हैं ॥

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि मूर्तिपूजा सनातन है, त्रेता और द्वापर तक का जो वृत्तान्त मिलता है उन से स्पष्ट प्रकट है कि यहां बड़े २ देवमन्दिर थे जिन में नित्य-पूजा होती थी, विद्वान् पूजा करते थे समय के प्रभावसे कुछ मन्द मतियों ने साधारण लोगों के चित्त में यह भ्रम उत्पन्न किया है कि मूर्त्ति पूजा सनातन नहीं ऐसे मन्द मतियों के कार्य पर सिवाय शोकके और क्या कहा जावे वे स्वयं गढ़े में गिरे हुए हैं और दूसरोंको भी गिराना चाहते हैं इसी लिये छोटे २ ट्रैक्टों और पुस्तकों द्वारा मूर्त्तिपूजा का अस्तित्व धार्मिक श्रद्धालुओंके हृदयसे मिटाना चाहते हैं यद्यपि उनका यह प्रयास व्यर्थ है क्योंकि आस्तिक हिन्दुओं को देवपूजा पर पूर्ण विश्वास है और वे इस विश्वाससे कभी च्युत नहीं हो सकते तथापि साधारण लोग जिन्हों ने कि शास्त्रों का अवगाहन नहीं किया है अपने कर्त्तव्य मार्ग से च्युत हो जाते

है वे लोग यदि निष्पक्षपात दृष्टिसे इस पुस्तक में लिखित प्रमाण और युक्तियों पर विचार करंगे तो वे मूर्त्तिपूजा के विषयमें बहुत कुछ समझ सकेंगे, अब प्रच्छन्न नास्तिकों के कुछ उन कुतर्कोंका उत्तर यहां पर और लिख दिया जाता है जो कि वे साधारण लोगों से उन्हें अपने कर्त्तव्य पथ से च्युत कराने के लिये किया करते हैं। कुछ प्रश्नोंका उत्तर पहिले भी लिखा गया है पर तथापि (शङ्काभिःसर्वमाक्रान्तमन्नं पानंच भूतले) शङ्कासे कुछ खाली नहीं है जहां पर शंका का कुछ भी प्रसंग नहीं है वहां पर भी प्रच्छन्न नास्तिक नयी २ शङ्कायें निर्माण करलेते हैं इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी कह गये हैं कि (न बुद्धिभेदं जनयेत्) बुद्धिमें भेद उत्पन्न न करे पर हमारे प्रच्छन्न नास्तिकों में न जाने कैसी उलटी बुद्धि समाई है कि वे सर्वसाधारण को श्रद्धा और भक्ति से च्युत करना ही अपना कर्त्तव्य समझ बैठे हैं॥

प्रच्छन्न नास्तिकों का पहिला आक्षेप यह है कि वेद के निम्न मन्त्रमें मूर्त्तिपूजाका निषेध है।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषीपरिभूःस्वयम्भूर्या-

याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यःसमाभ्यः॥

इस मन्त्र में जो अकाय शब्द है उससे विदित होता है कि परमात्मा शरीर रहित है, परन्तु यह उनका केवल अज्ञान है क्योंकि इसी मन्त्र में जो 'अव्रणम्, और 'अस्नाविरम्, ये दो विशेषण हैं इनका अर्थ होता है कि वह घाव आदि से रहित है तथा नस नाड़ी के बन्धन उसमें नहीं हैं, यदि परमात्मा के शरीर धारित्व का ही निषेध इस मन्त्र में अभिप्रेत होता तो अकाय शब्दसे ही पूर्ण सिद्ध होसकती थी कि वह शरीर रहित है फिर यह कथन कि उसमें नस नाड़ी के बन्धन नहीं हैं और वह घाव रहित भी है, व्यर्थ है जान लीजये कि किसी देवदत्त नामधारी व्यक्तिके कोई पुत्र नहीं है और कोई मनुष्य कहे कि देवदत्त के कोई पुत्र नहीं है और वह गोरा भी नहीं और लम्बा भी नहीं है, जैसे यह कथन व्यर्थ है ठीक उसी तरह उक्त मन्त्र में भी उक्त दोनों पदों की व्यर्थता सिद्ध है परन्तु वहां ईश्वर का शरीर रहित होना अभिप्रेत ही नहीं है किन्तु अभिप्राय यह है, कि काय शब्द चिञ् चयने धातु से बना है जो शरीर सञ्चित कर्मोंमें से बनता है वह काय कहाता है, परमेश्वर का शरीर कर्म जन्य नहीं है इस हालत में यह कथन भी ठीक बनजाता है कि वह नस नाड़ी के बन्धनों से

रहित है, क्योंकि उस परमात्माका शरीर दिव्य है जिसमें फोड़ा फुन्सी तथा नस नाड़ी आदि नहीं है, और इसी मन्त्र में जो, स्वयम्भूः पद है इससे भी स्पष्ट प्रकट है कि (स्वयं भवतीति स्वयम्भूः) जो स्वयं शरीर धारण करता है वही स्वयम्भू है. यह तो ठीक ही है कि मूर्त्ति साकार की होती है, इस लिये तो परमात्मा का उभयरूप शास्त्रों में लिखा है।

उभयंवा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च, परिमितश्चापरिमितश्च । द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्च । असंख्यामूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्ति शरीरतः । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते ।

इत्यादि प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि परमात्मा के दोनों रूप हैं, परमात्मा के साकार रूप की ही मूर्त्ति बनाई जाती है। प्रच्छन्ननास्तिकोंकी द्वितीय शङ्का यह है कि वेदमें निम्नलिखित मन्त्र द्वारा मूर्त्ति पुजनका निषेध है शु०यजु–अ०४०

अन्धन्तमःप्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततोभूयइवतेतमो य उसम्भूत्याᳪरताः ॥

प्रच्छन्ननास्तिक कहते हैं कि इस मन्त्र का यह अर्थ है कि जो लोग कभी उत्पन्न न होने वाली प्रकृति की उपासना करते हैं वे अन्धकार में गिरते हैं और जो संभूति अर्थात्

कार्य जगत् की उपासना करते हैं वे उससे भी अधिक अ-न्धकार में गिरते हैं इनका यह अर्थ ठीक है पर सनातनध-र्मियों पर इससे कोई दोष नहीं आ सकता क्योंकि सनातन धर्मी कोई भी जड़ माया का उपासक नहीं सभी हिन्दू लोग विष्णु शिवादि नामरूपात्मक एक चेतन ब्रह्मके ही उपासक हैं।

उपरोक्त मन्त्र में कार्य कारण रूप जड़ माया के उपासक बौद्धादि नास्तिकों का खण्डन है वे ही द्वादशायतन जड़ प्रकृत्यंशों के उपासक हैं इसी लिये उन्हीं की निन्दा है जिस त-रह शरीर रूपी अधिष्ठानकी पूजा सत्कार करने से चेतनात्मा प्रसन्न होता है तद्वत् मूर्त्ति रूपी अधिष्ठान के द्वारा ही परमा-त्मा की पूजा की जा सकती है आधार से आधेय की पूजा युक्ति सिद्ध है कोई बुद्धिके शत्रु कह बैठते हैं कि श्रीमद्भाग-वत के निम्नश्लोक में मूर्त्तिपूजकों को गधा बताया गया है पर विचार पूर्वक देखिये तो मूर्त्तिपूजकों को तो नहीं पर हां मूर्त्तिपूजा के विरोधियों को अवश्य यह उपाधि दी गई है। श्लोक यह है-

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः क-लत्रादिषु भौम इज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥

इसका यथार्थ अर्थ यह है कि जो मनुष्य दुर्गन्धित धातुत्रय सम्बलित शरीर में आत्मबुद्धि करता है यानी शरीर को ही आत्मा समझता है, स्त्री पुत्रादिकों में जो स्वधीः अर्थात् उनको अपना मानता है जिसकी भूमिनिर्मित वस्तुओंमें पूज्य बुद्धि है और जल में जो तीर्थ बुद्धि रखता है और कभी भी पण्डित मनुष्यों में जो पूज्य बुद्धि नहीं रखता वह ऐसा है जैसे गौओं में गधा।

सो वास्तव में अन्य में अन्य बुद्धि करना मूर्खों ही का लक्षण है सनातनधर्मी जलमात्रको ही पूज्य नहीं मानते किन्तु जलाभिमानी देवता को पूज्य मानते हैं प्रत्येक पदार्थ में एक तदभिमानी देवता रहता है जैसे जल में जलाभिमानी देवता, वही पूज्य है परन्तु आधार से ही आधेयकी पूजा हो सकती है इसी तरह पत्थर मात्रको कोई भी पूज्य नहीं मानता किन्तु उसमें व्यापक ईश्वरांश को ही पूज्य माना जाता है।

नह्यम्मयानितीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥

प्रच्छन्ननास्तिकों का कथन है कि भागवत के उपरोक्त श्लोक में मूर्तिपूजा का खण्डन है पाठक स्वयं विचार लें

इस का अर्थ यह है कि तीर्थ केवल जलमय नहीं हैं और न देवता ही मृत् मट्टी और पाषाण मय हैं, वे अधिक काल में पवित्र करते हैं और साधु लोगों के दर्शन से ही पवित्रता आ जाती है।

यदि इस श्लोक में मूर्त्तिपूजा का ही खण्डन अभिप्रेत होता तो यह क्यों कहते कि वे अधिककाल में पवित्र करते हैं जिस पदार्थ में पवित्रता देने की शक्ति नहीं है वह काल-त्रयमें भी पवित्र नहीं कर सकता बालू में तेल नहीं होता तो उसमें से हज़ारों वर्ष परिश्रम करने पर भी कोई तेल नहीं निकाल सकता। पूर्व श्लोक में अन्धकार का जो आशय है वही इस श्लोक में भी है कि देवताओं को मट्टी पत्थर समझना मूर्खों का काम है किन्तु उन २ पदार्थों में व्यापक ईश्वरांश को ही उस २ का अधिष्ठातृ देव समझना यथार्थज्ञान है जो यह समझ लेते हैं वह मूर्त्तिपूजा करने से शीघ्र ही पवित्र होते हैं और जिन्हें इतनी बुद्धि नहीं और श्रद्धा पूर्वक मूर्त्ति पूजा करते हैं वे भी अधिक काल में पवित्र हो जाते हैं दोनों श्लोकों के अभिप्राय में अधिकांश एकता है।

एक मूर्त्ति पूजा विचार नामक ट्रैक्ट इटावा आर्यसमाजियों की ओर से बहुत दिनों से छपता है इसमें मूर्त्ति पूजा

विषयमें बहुतसी शङ्कायें की गयीं हैं यद्यपि इनके उत्तर अनेक लेखों और व्याख्यानों में सनातन धर्मियों की ओर से दिये जा चुके हैं तथापि सर्वसाधारण के लाभार्थ इनका उत्तर यहां पृथक् छपाया जाता है। मूर्त्तिपूजा विचार में सबसे पहिले उपनिषद् की निम्नलिखित श्रुति लिखी है कि—

अपाणिपादोजवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुःसशृणोत्यकर्णः। सवेत्तिवेद्यंनचतस्यास्तिवेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषंमहान्तम् ॥

भावार्थ—इस श्रुतिका भावार्थ न लिखकर समाजी ने अपने मन्तव्यसे विरुद्ध "विन पद चले सुने विन काना" इत्यादि चार चौपाई तुलसीकृत रामायण की संसार को धोखा देने के लिये लिख मारी हैं समाजी से पूछना चाहिये कि जब तुम तुलसीकृत रामायण को प्रामाणिक ही नहीं मानते तब उक्त चौपाई क्यों लिखीं ? जिस कायदे से रामायण की इन चौपाइयों को ठीक मानोगे उसी कायदे से सब रामायण तुमको माननी पड़ेगी उस दशा में अवतार मूर्त्ति पूजादि सभी बातें रामायण में साफ २ लिखी भी तुम को मानने पड़ेंगीं। और प्रामाणिक न मानने की दशामें उक्त चौपाइयां प्रामाणिक नहीं

हो सकतीं तब लिखना व्यर्थ है। इसके लिये लौकिक दृष्टान्त यह है कि किसी कुआ वा नदी में भरे हुए बीच २ के थोड़े से जल को अच्छा और शेष को बुरा अग्राह्य जैसे तुम सिद्ध नहीं कर सकते हो वैसे ही रामायणादि पुस्तकों के भी कुछ अंश को ग्राह्य शेष को अग्राह्य नहीं ठहरा सकते। रहा (अपाणिपादो०) श्रुति का विचार सो भी सुनो ! जब तुम लोग उपनिषदों को वेद नहीं मानते तब उक्त श्रुति तुम्हारे मत में प्रामाणिक ही नहीं, जब तक तुम ऐसा ही प्रमाण अपने माने वेद में न दिखलाओ तावत् यह श्रुति तुम्हारे लिये ठीक २ वेदविरुद्ध ही रहेगी फिर वेदविरुद्ध प्रमाण प्रश्नों का आरम्भ करते ही तुमने क्यों लिखा ? यह बताओ, यदि कहो कि वेदविरुद्ध नहीं वेदानुकूल है तो जिस मन्त्रके अनुकूल मानते हो उस मन्त्र को दिखाओ यह एक प्रश्न समाजी पर हुआ और एक रामायण के विषय में कूपजल के दृष्टान्त से ऊपर हो चुका है। इस श्रुति से विरुद्ध तुम्हारे माने हुए वेद का प्रमाण हम आगे दिखाते हैं। शुक्लयजुर्वेद अ० १७ मन्त्र १६।

विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतो मुखो विश्वतोबाहुरुत-
विश्वतस्पात् ॥

भावार्थः—सब ओर हैं चक्षु जिसके वह विश्वतश्चक्षु कहाता, सब ओर हैं मुख बाहु और पग जिसके वह विश्वतोमुख, विश्वतोबाहु और विश्वतस्पात् कहाता है। विश्वतश्चक्षु समासान्त एक पद है और पूर्वपद विश्वतः में प्रकृतिस्वर होने से बहुव्रीहि समास होना भी सर्वथा सिद्ध है इससे यही अर्थ हो सकता है कि सब ओर हैं चक्षु आदि जिसके इस से भिन्न कुछ भी अर्थ तुम बदल ही नहीं सकते। ऐसी दशामें समाजी महाशय! अब जवाब दीजिये कि जिस ईश्वर को उपनिषद् के प्रमाणसे अपाणि नाम हाथ हीन सिद्ध करना चाहते थे वह तुम्हारे वेदमें विश्वतोबाहु नाम सब ओर हाथों वाला निकला; जिसको तुम अपाद् कहते थे वह विश्वतस्पात् नाम सब ओर पगों वाला, जिसे तुम अचक्षु कहते थे वह विश्वतश्चक्षु नाम सब ओर आंखों वाला लिखा है और भी बाहर भीतर की आंखों से देखो।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

शु० य० अ० ३१।

इत्यादि मन्त्रों का भी यही अभिप्राय स्पष्ट है जो ऊपरके मन्त्र का है और भी देखिये कि यदि ईश्वरके हाथ न होते तो

क्षत्रिय वर्ण को कहां से उत्पन्न करना, यदि पग नहीं थे तो [पद्भ्यां भूमिः] ऐसा वेद में क्यों कहा ? कि ईश्वर के दो पगों से भूमि उत्पन्न हुई। यदि निराकार ईश्वर चक्षु हीन था तो वेद में [चक्षोः सूर्यो अजायत] ईश्वर की आंख से सूर्य उत्पन्न हुआ ऐसा क्यों कहा ? यदि ईश्वर के श्रोत्र वा कान नहीं थे तो (श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च। दिशः श्रोत्रात्) ईश्वर के कान से वायु प्राण और दिशा पैदा हुई ऐसा वेदमें क्यों लिखा ? पाठकगण ! देखिये समाजी के प्रश्न तो अभी आरम्भ भी नहीं हुए तब तक समाजी के सिर पर छः सात प्रश्नों का बोझा आ गया जिससे घबराने का अवसर होगा, अर्थात् हमारे लिखे अनुसार समाजियों से प्रश्न करने की रीति सनातनधर्मियों को सीखना चाहिये। ऊपर हमने समाजी के मतानुसार दोष दिये हैं। अब यदि कोई अन्य वा समाजी महाशय कहें कि (अपाणिपादो०) और (विश्वतश्चक्षु०) इत्यादि उपनिषद् सहित तुम्हारे मत में दोनों ही वेद हैं दोनों ही मन्त्र तुमको स्वतः प्रमाण मान्य भी हैं तब तुम्हारे मत में भी तो वही उक्त दोष होगा जो पूर्व समाजी के मत में तुम ने दिखाया है और वैसे ही प्रश्न तुम पर भी हो सकते हैं। इस से हम स्वमत में उत्तर लिखते हैं—

प्रथम तो (अपाणि पादो०) मन्त्र का मूर्त्ति पूजा करने न करने से कुछ सम्बन्ध नहीं है। ईश्वर वास्तव में आंख कान हाथ पांव वाला नहीं है यदि वास्तव में वैसा हो तो अनित्य पदार्थ का नाम ईश्वर ठहरेगा। वास्तव में हाथ पांव वाला शरीर है इसी लिये वह अनित्य है और शरीर में जीव नाम रूप से वा अवतार नाम रूप से प्रकट होने वाले चेतन शक्ति रूप ईश्वरके साथ हस्त पादादि अंगोंका सम्बन्ध साक्षात् नहीं है किन्तु शरीर के साथ अवयवावयवी सम्बन्ध हस्त पगादि अंगोंका जैसा है वैसा ही यदि चेतन शक्ति के साथ होता तो यह कहना नहीं बनता कि (नैनं छिन्दन्ति श- स्त्राणि०) उस को न शस्त्र काट सकते न अग्नि जला सकता न जल डुबा सकता और न वायु सुखा सकता है परन्तु शरीर प्रत्यक्ष ही कटते जलते डूबते और वायुसे सूखते दीखते हैं। वास्तव में (अपाणिपादो०) श्रुति का अर्थ यही है कि शरीरस्थ चेतन शक्ति हस्त पादादि अंगों वाली नहीं, अर्थात् उस के साथ पादादि का साक्षात् अवयवावयवी सम्बन्ध नहीं है; वही सब ज्ञेय का जानने वाली है क्योंकि अवतार वा त- पस्वी ऋषि महर्षि ब्रह्मर्षि राजर्षि आदि शरीरावच्छिन्न चेतनों ने ही अब तक जो कुछ जाना उसी ज्ञान सम्बद्ध शास्त्र बने

हैं निराकार निर्गुण में जानना भी नहीं बनता। इस श्रुति के अर्थ सम्बन्ध में समाजी पर दो प्रश्न आते हैं, एक तो यह कि (न च तस्यास्ति वेत्ता) जब उस का जानने वाला कोई नहीं है तो तुम अपने अभिमत निराकार को कुछ भी जान नहीं सकते तब तुम ने यह कैसे जाना कि वह निराकार है ? और यह कैसे जाना कि उस का कुछ आकार नहीं है ? यदि तुमने यह जान लिया कि वह निराकार है तो (न च तस्या-स्ति वेत्ता) कहना वदतोव्याघात दोष ग्रस्त तुम्हारा कथन क्यों नहीं हुआ ? । और द्वितीय प्रश्न यह है कि जीव ईश्वर तुम्हारे मत में दो पदार्थ स्वतः सिद्ध भिन्न २ हैं। ईश्वर सदा से निराकार है कभी अवतार भी नहीं ले सकता इस कारण ईश्वर में हस्त पादादि अङ्गों की सर्वथा ही अप्राप्ति है और प्राचीन कालसे अब तक सर्वमतानुसार सिद्ध है कि-

प्राप्तौ सत्यां निषेधः । अप्राप्तौ विधिः ।

क्या पाणिनीय व्याकरण में वा अन्य शास्त्रमें तुम दिखा सकते हो कि किसीसे प्राप्ति न होनेपर भी कोई निषेध वचन कहा गया हो । इस से यह प्रश्न हुआ कि जब निराकार ईश्वर में हस्त पदादि अगों की प्राप्ति नहीं थी तब (अपाणि पादो०) निषेध क्यों कहा गया ? । और यह तो सभी महा-

शय समझ गये होंगे कि शरीरावच्छिन्न चेतन शक्तिरूप ईश्वर में अविद्या वश माना जाता है कि मेरे बाहु मेरे हाथ मेरे पग मेरे चक्षु मेरे श्रोत्र हैं मैं लूला लँगड़ा अन्धा और बधिर हूं। अहं वा मम ये शब्द शरीरस्थ चेतन परक हैं, सो वास्तव में शरीरस्थ चेतन के हस्त पादादि अंग नहीं हैं शरीर के साथ संयोग सम्बन्ध होने के कारण शरीर के तुल्य आत्मा के भी हस्त पादादि प्राप्त हुए इसी लिये हमारे मत में प्राप्ति होने पर (अपाणिपादो०) निषेध किया गया, इस प्रकार हमारे मत में तो निषेध बन सकता और समाजी मत में कदापि निषेध करना नहीं बनता। समाजियों को भी मानना पड़ेगा कि हमारे मत में ईश्वर से भिन्न होने पर भी शरीरस्थ जीवात्मा (नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः) श्रुतिके अनुसार स्त्री पुरुष वा नपुंसक नहीं है किन्तु स्त्रीत्व पुंस्त्व क्लीवत्व के चिन्ह वा अंग शरीर में हैं। शरीर के साथ सम्बन्ध होने से आत्मा में भी प्राप्त होने पर निषेध किया गया है। इस उक्त श्रुतिसे विरुद्ध एक दूसरी भी श्रुति है कि

त्वंस्त्रीत्वंपुमानसि त्वंकुमारउतवाकुमारी।
त्वंजीर्णोदण्डेनवंचसि त्वंजातोभवसिविश्वतो-
मुखः॥

अर्थ-हे आत्मन् ! तुम्हीं अपनी माया के साथ प्रकट हुए स्त्री पुरुष बालक बालिका युवा और वृद्धरूप हुए लकड़ी टेक कर चलने वाले हो इन दोनों परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाली श्रुतियों की संगति यह है, कि जैसे एक ही आकाश घटादि में और भिन्न भिन्न प्रकार के छोटे बड़े कमरों में भिन्न २ आकारों वाला दीखता है आकाश वास्तव में अखण्ड एक रस है न वह घट में घटाकार न मठमें मठाकार न घट मठ में खण्डित हुआ इस कारण वास्तव में आरोपित सभी धूलि वा धूमादि धर्मों से निर्लेप है परन्तु घट मठादि में जो पोल वा अवकाश है वही घट का मुख्य घटपन और मठ का मठपन है क्योंकि उसी अवकाश से घट मठसे सम्बन्ध रखने वाले काम निकलते हैं घटमें पोल न हो तो अन्न वा जलादि कहां भरा जाय ? इससे यह भी कहा जाना ठीक है कि आकाश ही घटाकृति में मृत्तिका से घिरा हुआ घट है और भित्तियों से घिरा हुआ आकाश ही मठ वा घर है जैसे यहां परस्पर विरुद्ध दोनों धर्म आकाश में व्यवहृत होते हैं वैसे ही आत्मा में स्त्रीत्व पुंस्त्वादि का भाव और अभाव दोनों ही वेद ने दिखाये हैं। वास्तव में अपने शुद्ध स्वरूप से न वह स्त्री है न पुरुष है परन्तु उसे छोड़कर केवल शरीर

में भी स्त्रीत्व पुंस्त्वादि नहीं बन सकते क्योंकि दो के संयोग में प्रकट होने वाला कोई भी गुण वा स्त्रीत्वादि धर्म किसी भी एक में नहीं माना जा सकता वा एकमें कोई वह धर्म को नहीं दिया जा सकता इससे तो उस धर्मका निषेध है और यह भी नियम है कि-

यत्र द्वयोः संयोगो भवति लभतेऽसावन्यतरतो व्यपदेशम् । यथा देवदत्तस्य पुत्रो देवदत्तायाः पुत्र इति ॥

जो कोई वस्तु वा गुण दो के संयोग से प्रकट होता है वह उन दो में से एक २ का भी व्यवहार में कहा जाता है जैसे स्त्री पुरुष दोनों के संयोग से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता और माता एक २ के नाम से भी कहा जाता है इसी के अनुसार माया और ब्रह्म परमात्मा के संयोग से हुई स्त्री पुरुष वा हस्त पादादि अंग रूप सृष्टि पृथक् २ दोनोंमें ही संघटित न हो सकने से तो (नैव स्त्री न पुमानेष०) वा (अपाणिपादो०) इत्यादि निषेध किया और दोनों के संयोग से होने के कारण (विश्वतश्चक्षुः०) वा (त्वं स्त्री त्वं पुमानसि०) इत्यादि कहा गया। वेद वेदान्त के सिद्धान्त से माया को अ-

सद्वस्तु माना है कि वास्तव में कुछ नहीं है। जैसे जल से भिन्न जल तरंग वा फेनादि कुछ न होने पर भी जल ही तरंग बुद्‌बुद फेनादि कल्पित नाम रूप से स्वप्नवत् व्यवहार कोटि में प्रतीत होता है इसी प्रकार एक ब्रह्म परमात्मा में अन्य कुछ न होने परभी पृथिव्यादि संसार कल्पित नाम रूप से व्यवहार कोटि में प्रतीत होता है उन पृथिव्यादि के अवयवोंमें हस्त पादादि वा स्त्री पुरुषादि नाम रूप जल तरंगवत् कल्पित होगये हैं। ऐसा सिद्धान्त सहस्रों युक्ति प्रमाणों द्वारा अटल रूपसे सिद्ध हो चुकनेके कारण स्त्री पुरुष वा हस्त पादादि का व्यवहार सद्वस्तु ब्रह्म में तो बन सकता है किन्तु असत् माया में नहीं बन सकता, इस कारण चेतन शक्ति आत्मा में स्त्रीत्व पुंस्त्वादि वास्तव में न होने पर भी माया सम्बन्ध से कल्पित हैं। इस कारण माया में भाव अभाव न दिखाकर वेदने एक आत्मा में ही स्त्रीत्व पुंस्त्वादि के भाव अभाव दोनों दिखाये हैं। सारांश यह निकला कि वास्तव में हस्तपादादि ब्रह्म में न होने पर भी उपाधि के संयोग से उसमें हस्तपादादि व्यवहारार्थ माने जाते हैं इससे दोनों बातें ठीक हैं।

इस उक्त श्रुति और रामायण की चौपाइयों से आगे समाजीने लिखा है कि "यदि आप लोग मूर्त्तिपूजाके बड़े प्रेमी हैं

तो सब से पहिले निम्न प्रश्नों का उत्तर विचार कर कार्य कीजिये" सच्चिदानन्द परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना को वास्तव में हठ पूर्वक अज्ञान ग्रस्त होकर समाजियों ने केवल स्वयं ही परित्याग नहीं किया किन्तु जहां तक हो सका अन्य सहस्रों धर्मनिष्ठ सनातनधर्मियों से भी सच्चिदानन्द परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना छुड़ानेका पाप भी समाजियों ने अपने शिर पर क्या नहीं लाद लिया ? सच्चिदानन्द परमेश्वर की ही सनातन धर्मी लोग पूजा भक्ति और उपासना जैसे करते मानते हैं और समाजी लोग जैसे सच्चिदानन्द के विरोधी हैं यह विचार हम आगे २ इन प्रश्नों के उत्तरमें सम्यक् दर्शावेंगे। आगे मनु० अ० २। ८ समाजी ने लिखा है कि-

सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेतवै॥

इस का अर्थ समाजी ने यह लिखा है कि-"विद्वान् (को उचित है कि वह) सब बातों को ज्ञान नेत्र से देख कर वेद के प्रमाण से अपने धर्म को स्वीकार करे,; यह अर्थ मूल से विरुद्ध है क्योंकि मनुजी का अभिप्राय ऐसा होता कि सब बातोंको सोचकर-तो वार्त्ता शब्दके स्त्री लिङ्ग होनेसे (सर्वास्तुसमवेक्ष्येमा०) इत्यादि प्रकार का श्लोक बनाते सो न

बनाकर कर्म वाचक पद नपुंसक रक्खा है इससे सब व्याक- रण निरुक्त मीमांसादि शास्त्रको सोच समझ कर विद्वान् वेद प्रमाण से अपने धर्म पर आरूढ़ हो अर्थात् व्याकरण निरुक्त मीमांसादि शास्त्र से श्रुत्यर्थ का निश्चय हो सकता है समाजी लोग ऐसा न करके वेद का मन माना अर्थ करते हैं इस का- रण समाजियों का विचार वा चेष्टा मनुजी के इस श्लोकसे भी विरुद्ध है। हम शपथ दिलाते हुए प्रश्न कर्तादि समाजि- योंसे कहते हैं कि वे हमारे इस लेख को पक्षपात हठ दुराग्रह का परित्याग करके अपने नियमों में लिखे अनुसार सत्य का ग्रहण करने की इच्छा से देखें सुनें तो वे अवश्य कल्याण के भागी होंगे। हम को यह पूरा २ निश्चय हो गया है कि मनु जी के उक्त श्लोकोक्त आदेशानुसार समाजी लोग ज्ञान चक्षु से शास्त्रोंका अवलोकन नहीं करते किन्तु वे समाजी कल्पित मत के आग्रह से अचलित बुद्धि से वेदार्थ कहने लिखने को तयार रहते हैं इसीलिये इन लोगों का जो कुछ विचार होता है वह प्रायः सभी वेदादि शास्त्र से विरुद्ध होता है। अब हम समाजी के प्रश्नों को दिखाते हुए क्रम से उत्तर देना आर- म्भ करते हैं—

प्रश्न (१) ईश्वरके लक्षण गुण कर्म और स्वभाव क्या हैं?

उत्तर (१) यद्यपि इस प्रश्नका खण्डन हो सकता है वा यों कहो कि मूर्त्तिपूजा विषय में प्रश्न करनेकी प्रतिज्ञा की थी और मूर्त्तिपूजा के साथ पहिले ही प्रश्नका सम्बन्ध कुछ नहीं दिखाया इससे पहिला ही प्रश्न वदतोव्याघात दोष ग्रस्त हुआ समाजी प्रश्न कर्ताकी अज्ञानता को प्रकट करता है तथापि हम इन अंशों पर विवाद न करके सीधा २ उत्तर लिखेंगे। ईश्वर में वास्तविक कोई भी गुण वा कर्म नहीं कहा जा सकता, साकार मानने की दशामें गुण कर्म आरोपमात्र मानना ही युक्ति प्रमाण से सिद्ध है। जैसे आकाश निष्क्रिय द्रव्य है कहीं का आकाश कहीं चला जाय वा आकाश में उत्क्षेपणादि कर्म हों वा आकाश हिले ऐसा कभी नहीं हो सकता चाहे यों कहो कि क्रिया वा कर्म परिच्छिन्न द्रव्य में होता है अपरिच्छिन्न में कोई कर्म कहना युक्ति विरुद्ध है अर्थात् जैसे अखण्ड अपरिच्छिन्न ईश्वर में क्रिया वा कर्म नहीं बन सकता वैसे ही उसमें कोई गुण भी नहीं ठहर सकता। ऐसी दशामें ईश्वर को निराकार अखण्ड अपरिच्छिन्न मानने वाला मनुष्य उसमें गुण वा कर्म कैसे मान सकता है? ईश्वर के गुण कर्म क्या हैं यह पूछना वा कहना शशशृङ्ग खपुष्प तथा वन्ध्यापुत्र के सर्वथा तुल्य है क्रिया जिसमें होती है उसे

विकारी बनाती है ईश्वर में किसी गुण वा कर्म को कोई किसी भी प्रकार सिद्ध ही नहीं करता और जिसमें गुण कर्म आरोपादि से भी सिद्ध किये जांय वह निराकार अखण्ड अपरिच्छिन्न नहीं कहा जासकता तब निराकार ईश्वर के गुण कर्म पूछना ऐसा ही है जैसे कोई आकाश में लगे पुष्पों का रंग वा गन्ध पूछे सो जब आकाशमें पुष्प लगते ही नहीं तब रंगादि का प्रश्न जैसे बे समझी से है वैसे ही निराकार के गुण कर्म जानो लौकिक दृष्टान्त भी देखिये अग्नितत्त्व अपने सूक्ष्म अतीन्द्रिय अचिन्त्यरूप से सब काष्ठादि में व्याप्त है अदृश्य और अपरिच्छिन्न होने से सापेक्ष निराकार भी कहा जायगा तब सोचिये कि प्रकट हुए अग्निमें जो तेजोरूप है वह रूप गुण काष्ठ में व्याप्त अग्निमें नहीं और ऊपर को भक् २ करते हुए ज्वलित होना वा काष्ठादि को दग्ध करना कर्म भी काष्ठस्थ व्याप्त अग्नि में नहीं है परन्तु काष्ठरूप अरणियों की रगड़ द्वारा जब अग्नि साकार स्वरूप धारण करता है तभी उसमें रूपादि गुण और ऊर्ध्व ज्वलन वा दहनादि कर्म प्रत्यक्ष दीखते हैं । गुण और कर्म साकार वस्तु के चिन्ह हैं। इससे सिद्ध हुआ कि निराकार में गुण कर्म पूछना प्रश्नकर्त्ता की बे समझी है ॥

ईश्वर का स्वभाव यही है कि वह सब कुछ संसार वारर करता कराता हुआ भी सब से पृथक् है——

देवस्यैषस्वभावोयमाप्तकामस्यकास्पृहा ।
क्रीडन्निवैतत्कुरुतेपरमेष्ठीपुनःपुनः ॥

परमेश्वर का यह स्वभाव ही है कि वह साकार ब्रह्मादि नामरूप धारण करके इस संसार को बनाता बिगाड़ता है। ईश्वर के लक्षण पूछने से प्रश्न कर्त्ता का यदि यह अभिप्राय हो कि-योगदर्शन में ईश्वर का लक्षण-अविद्यादि क्लेश और कर्म फल भोगसे पृथक् रहने वाला ईश्वर है परन्तु अवतारों में अविद्यादि क्लेश और कर्म फल भोग वर्णित है तब इस का संक्षेप से उत्तर यही है कि अवतारों में क्लेश वा कर्म विपाक नहीं थे जिनको दीखते हैं उनकी भूल है। अनेक प्रकार के लक्षण ईश्वर के होने और हो सकने पर भी हम सत् चित् और आनन्द इन तीन को ही यहां ईश्वर के लक्षण नाम चिन्ह माने लेते हैं। (यः सच्चिदानन्दलक्षणः स ईश्वरः) सत् चित् आनन्द ये तीन शब्द हैं। सत् नाम सर्वत्र सब संसार में ऐसे ही विद्यमान है जैसे कि सूत जन्य सभी वस्त्रों में सूत ही सूत ओत प्रोत हो रहा है ऐसे ही संसार के सब वस्तुओं में एक ही ईश्वर ओत प्रोत हो रहा है।

स ओतःप्रोतश्चविभूःप्रजासु ॥ यु० य० ३२।८।
सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्येविष्णौप्रकल्पिताः ॥

अर्थ—यहां पहिला प्रमाण वेद का और द्वितीय आत्मबोध का स्मार्त्त प्रमाण है। प्रयोजन यह कि परमेश्वर सत् चित् रूप से सब में विद्यमान है जैसे ओत प्रोत सूत से भिन्न वस्त्र कुछ नहीं वैसे ओत प्रोत ईश्वर से भिन्न संसार कुछ नहीं है। इदमस्ति इदमस्ति-यह है २ इत्यादि प्रकार जिस २ वस्तु के साथ जितनी अस्ति पद की आवृत्तियां हैं वे सब अस्तित्व उसी के सद्भाव को लेकर हुए हैं संसार में जितना अस्ति पद का प्रयोग है वह सब जिस एक वस्तु की सत्ता के आधार पर है वही ईश्वर सत् पद वाच्य हैं। जब अस्ति मूर्त्तिः। सती मूर्त्तिः। सन्मूर्त्तम्। इन सब में भी सत् पदवाच्य ईश्वर अपेक्षित है तब उस २ काष्ठादि में उसी २ के रूप से विद्यमान अग्नि के तुल्य मूर्त्ति आदि पदार्थों में मूर्त्ति के ही रूप से विद्यमान परमेश्वर देव की पूजाका नाम ही मूर्त्ति पूजा है। जैसे संसार में जहां कहीं जिस किसी में जैसी कैसी जो कुछ शीतलता विद्यमान है वह सब जल की है वैसे ही मनुष्य पश्वादि में उद्भूत और स्थावर सृष्टिमें तिरोभूत सब प्रकार की व्यष्टिगत चेतना की समष्टि चित् पद वाच्य एक

परमात्मा ही है। तथा आनन्द भी देव मनुष्यादि सृष्टि में व्यष्टि रूप से कहीं आविर्भूत कहीं तिरोभूत अनेक प्रकार का है इसी लिये कहा है कि-

अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः ।
आब्रह्मास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ॥

एक अखण्ड आनन्द स्वरूप परमात्माके लेश मात्र आनन्द से ब्रह्मादि देव तथा मनुष्यादि आनन्दित हो जाते हैं इस से वह आनन्द का समष्टि है। संसार में जो कुछ आनन्द दीखता है वा जिस २ की नाना विधि सत्ता दीखती तथा जो चेतनता दृष्ट वा अदृष्ट है वे सभी साक्षात् सत् चित् और आनन्द एक ईश्वर के ही प्रत्यक्ष साकार स्वरुप हैं। इसी लिये वह सच्चिदानन्द कहाता-वेदान्ती लोग इसी सच्चिदानन्द को अस्ति भांति प्रिय नामों से कहते हैं। इससे सत्त चेतनता और आनन्द ही उस के लक्षक होनेसे ये ही ईश्वर के लक्षण हैं॥

प्रश्न—(२) यदि परमात्मा साकार है तो किसके आधार पर ठहरा हुआ है? साकारको आधार अवश्य चाहिये क्योंकि साकार पदार्थ बिना आधारके ठहर नहीं सकता।

उत्तर—(२) पाठकवर्ग! ध्यान दीजिये कि यही प्रश्न

परमेश्वरको सर्वथा ही कोरा निराकार माननेवाले प्रश्न कर्त्ता के ऊपर भी ज्यों का त्यों उपस्थित होता है जैसे प्रत्येक वस्तु की स्थिति ही उसके अस्तित्वका मुख्य प्रमाण हैं। यदि निरा कार की स्थिति किं प्रकारिका है ऐसा कुछ भी बोध न हो सके तो उस निराकारका अस्तित्व भी सिद्ध नहीं होसकता जब निराकार की स्थिति व्यापक रूपा जानी गई तो व्याप्य साकार ही उसका अस्तित्व साधक हो गया ऐसी दशा में तुम बतलाओ कि तुम्हारा निराकार किस अपराध पर ठहरा हुआ है ? यदि उसका कोई आधार नहीं तो तुम उसे व्यापक भी नहीं कह सकते और व्यापक मानते ही व्याप्य वस्तु उस का आधार सिद्ध होकर अस्तित्वका साधक होगा इस दशा में व्याप्य का आधार व्यापक और व्यापकका आधार व्याप्य माना जायगा। यदि प्रश्न कर्त्ता व्यापक को व्याप्याश्रित न मानें तो व्याप्य की अपेक्षा छोड़ कर व्यापक की व्यापकता को कदापि सिद्ध नहीं कर सकते। यदि ठीक ध्यान देकर शोच बिचार किया जाय तो व्याप्य व्यापक और आधाराधेय सम्बन्ध उपादान कारण और उसके कार्यमें सर्वत्र घटता है। आकाश वायु अग्नि जल भूमि इनमें पहिला२ तत्व पिछले२का उपादान कारण होना प्रत्यक्षसे भी वैसाही सिद्ध है कि जैसा

वेदादि शास्त्रोंके (आकाशाद्वायुः वायोरग्निः) इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है। यदि वायु का निरोध कर दिया जाय तो अग्नि एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। एक घड़े में जलता हुआ दीपक रखके घड़े का मुख ऐसा बन्द करदो जिसमें बाल भर भी कहीं सांस न रहे तो उसी क्षण दीपक बुझ जायगा, इसी प्रकार वायु के पहुंचने का सर्वथा निरोध होने पर अग्नि का बड़ा ढेर भी एक दम बुझ जायगा इससे सिद्ध हुआ कि अग्नि का उपादान कारण वायु है वैसे ही वायु का उपादान आकाश है जल का उपादान अग्नि और पृथिवी का उपादान जल है। जैसे पृथिवी से उत्पन्न होने वाले घट पटादि सभोंमें पृथिवी के परमाणु व्यापक हैं सूत से उत्पन्न सभी वस्त्रों में सूत व्यापक है, सुवर्ण के सभी भूषणों में सुवर्ण व्यापक है तथा घट वस्त्र और भूषणों के आधार भी पृथिवी सूत और सुवर्ण प्रत्यक्ष भी सिद्ध है। और प्रश्न कर्त्ता समाजी भाई भी जब ईश्वर को व्यापक और सब जगत् का आधार निर्विकल्प ही मानते हैं तब उनको व्याप्य और आधेय सभी जगत् का उपादान कारण ईश्वर को मानने ही पड़ेगा ऐसी दशा मे साकार ईश्वरके आधार का प्रश्न उपस्थित हो सकता है वा नहीं यह प्रश्न कर्त्ता को स्वयं न्याय कर लेना चाहिये अर्थात् ऐसी दशा में उक्त प्रश्न कदापि नहीं हो सकता॥

यदि प्रश्न कर्ता कहें कि जैसे आकाश घट पटादि में व्यापक है पर घट पटादि का उपादान नहीं वैसे ही ईश्वर भी जगत् का उपादान न होता हुआ भी सब में व्यापक और सब का आधार माना जायगा तो इस का संक्षेप से उत्तर यह है कि हम आकाश को परम्परागत उपादान कारण ऊपर सिद्ध कर चुके हैं, घट पटादि का मुख्य तथा साक्षात् उपादान पृथिवी है आकाशादि पदार्थ परम्परागत सभी घट पटादि के उपादान हैं। जैसे घट का घेरा रूप आकार पृथिवी उसके भीतर उसी आकारवाला हुआ आकाश उसमें भी वायु तथा अग्नि जल ये सभी घट पटादि के सर्वांश में विद्यमान व्यापक और घटावस्था के आधार भी आकाशादि सब उपादान होने से ही सिद्ध हैं इस लिये आकाश का दृष्टान्त प्रश्न कर्त्ता समाजी के मत में कदापि घट नहीं सकता। ऐसी दशा में व्याप्य व्यापक और आधाराधेय सम्बन्ध उपादान उपादेय के बिना सिद्ध करने के लिये समाजी के पास कोई दृष्टान्त शेष नहीं रहा और हमारे मत में अन्य भी सैकड़ों प्रत्यक्ष दृष्टान्त विद्यमान हैं। सो यह बात हम वेद के प्रमाण से भी पाठकों को आगे दिखाते हैं। शुक्ल यजु अ० ३१। ३२ में देखिये—

पुरुषएवेदᳬ सर्वं यद्भूतंयच्चभाव्यम् ॥
पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ॥
तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः ॥ तदे-
वशुक्रं तद्ब्रह्म ताआपःसप्रजापतिः ॥ तस्मिन्नि-
दᳬ संचविचैतिसर्वᳬ सओतःप्रोतश्चविभूःप्र-
जासु ॥

भावार्थ—वेद वेदान्त और निरुक्तकारादिने इदं शब्द को प्रत्यक्षार्थ परक माना है कि यह सब प्रत्यक्ष विद्यमान जगत् और जो पीछे हो चुका नाम उत्पन्न हो २ कर नष्ट हो गया और जो भविष्य में होने वाला है वह सभी जगत् पुरुष ही है अर्थात् परमेश्वर से अभिन्न उसी का रूपान्तर हैं। जैसे मट्टी से घड़ा सूतसे वस्त्र और सुवर्ण से आभूषण त्रिकाल में भी कभी पृथक् नहीं होता किन्तु घटादि सदा मट्टी आदिक स्वरूप ही सिद्ध होते हैं वैसे यह सब तीनों कालका जगत् ईश्वर का ही स्वरूप है उससे भिन्न कुछ नहीं है। इस मन्त्र में (पुरुषएवेदम्) ऐसी संहिता का विच्छेद दो प्रकार से हो सकता है कि पुरुषे, एव, इदम्। और-पुरुषः, एव, इदम्।

तदनुसार कोई लोग समाजी आदि पुरुष पद को सप्तम्यन्त मानकर यह अर्थ करते हैं कि यह प्रत्यक्ष वर्त्तमान सब जगत् पुरुष में ही है इस अर्थ से वे लोग द्वैत पक्ष की रक्षा करना चाहते हैं सो यह अर्थ इस कारण अशुद्ध है कि पद पाठ से विरुद्ध है वेद के पदकार महर्षियोंने ऐसे मनमाने अर्थ करने की आशंका मिटाने के लिये ही अति प्राचीनकाल से वेदका पदच्छेद करके पृथक् पुस्तक बना दिये थे उस पदपाठानुसार वेद के पदच्छेद सभी विद्वान् प्राचीनकाल से मानते आते हैं। स्वा० दयानन्द जी ने भी पदच्छेद को प्रामाणिक माना और स्वयं उस से विरुद्धार्थ किया इससे यह अर्थ विचारशीलों को त्याज्य अवश्य है क्योंकि वेद के अन्य प्रमाणों से सिद्ध अद्वैत पक्ष से भी विरुद्ध होने के कारण वह अर्थ ग्राह्य नहीं है ॥

(पादोऽस्यविश्वा०) इस पुरुष परमात्मा के एक चतुर्थांश से सब संसार प्रकट हुआ है यद्यपि परमेश्वर अखण्ड है तथापि अखण्ड आकाशादि में होने वाली व्यवहार साधक कल्पना के तुल्य वेदने परमेश्वर में चार भाग कल्पित किये वा यों कहो कि अनुमान किया गया कि इस परमेश्वर के तीन भाग ज्ञान प्रकाश स्वरूपमें सदा अमृत नाम मुक्त रहते हैं

और एक चतुर्थांश ईश्वर सब कार्य जगत्रूप से जन्म मरण धर्म वाला होता है। तीन पादके अमृत कहनेसे संसार रूप एक पाद का मर्त्य होना अर्थात् सिद्ध हो गया। संसार संबद्ध व्यवहार की सिद्धि अखण्ड कल्पना किये बिना कदापि हो ही नहीं सकती। जैसे सभी दार्शनिक विद्वान् काल को अखण्ड पदार्थ मानते हैं, नैयायिकों ने भी कालको विभु माना है परन्तु वेदादि शास्त्रों में कल्प, मन्वन्तर, युग, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, दिन, रात, प्रहर, घटिका, पल, क्षण, इत्यादि सहस्रों खण्ड काल के किये गये हैं। जब वेद ने अखण्ड कालके विभाग कल्पना किये तब भी जैसे काल खण्डित न होकर अखण्डित ही रहा वैसे ही अखण्ड ईश्वर में व्यवहार सिद्ध्यर्थ खण्ड कल्पना होने पर भी वह सदा अखण्ड ही रहता है। (पादोऽस्य) मन्त्र में चतुर्थांश ईश्वर को संसार स्वरूप से वेदने स्पष्ट साकार कह दिया है यही अभिप्राय भगवद्गीता में स्पष्ट लिखा है।

विष्टभ्याहमिदंकृत्स्न-मेकांशेनस्थितोजगत् ॥

अर्थात् ईश्वर अपने चतुर्थांश उपादान से स्थूल जगत्रूप से अवस्थित हो रहा है। इस मन्त्र के अभिप्राय से स्पष्ट हो गया कि एक चतुर्थांशमें जगत् रूपसे साकार ईश्वर अपने

ही तीन भागरूप निराकार के आधार पर ठहरा हुआ है क्योंकि उपादेय कार्य वस्तु सदा ही अपने उपादान रूप आधारके अवलम्ब से स्थित रहा करता है। जब कि हम सनातनधर्मी लोग वेद के सहस्रों प्रमाणों और अगणित युक्तियों से परमेश्वर के साकार निराकार दोनों स्वरूपों को सिद्ध करते हुए मानते हैं और यह बात समाजी आदि प्रतिपक्षियों को भलीभांति से विदित भी है तब यह जान लेना सहज ही था कि साकार ईश्वर की अवस्थिति निराकार ईश्वर के आधार पर सनातनधर्म के पक्ष में हो सकती है ऐसी दशा में समाजी का प्रश्न बेसमझी से किया गया सभी मान लेंगे॥

(त्रिपादूर्ध्व उदैत्पु०) इत्यादि तृतीय मन्त्रका अभिप्राय सर्वांश में द्वितीय मन्त्रोक्त अंशका अनुवाद है (तदेवाग्नि०) मन्त्र में स्पष्ट दिखा दिया है कि वही ब्रह्म अग्नि, सूर्य, वायु चन्द्रमा, जल, शुक्र, और प्रजापति आदि अनेक रूपों से साकार हो रहा है। भगवद्गीता में-

यदादित्यगतंतेजो जगत्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौ तत्तेजोविद्धिमामकम्॥

अर्थ-सूर्यमण्डल चन्द्रमा और अग्नि में जो तेजः प्रकाश सब जगत् को प्रकाशित कर रहा है वह सब तेज मुझ ईश्वर का है अर्थात् उन २ सूर्यादि में प्रकाश तेजः स्वरूप से मैं ही विद्यमान हूं। तेज को चक्षुर्ग्राह्य होने से सभी साकार मानते हैं, वह आदित्यादि नामरूप साकार ईश्वर अपने निराकार स्वरूप के आधार पर सदा स्थित रहता है। तथा शुक्ल यजु० अ० ६ में देखो——

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।
सूर्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥

इन दोनों मन्त्रों में चक्षुर्ग्राह्य ज्योतिका अग्नि और सूर्य पदवाच्य ईश्वर के साथ तादात्म्य सम्बन्ध दिखाते हुये एका कारता सिद्ध की है जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोह पिण्ड अग्निमय अग्नि स्वरूप ही होजाता है इसीके अनुसार ज्योतिः स्वरूप से प्रकट अग्नि और आदित्य परमात्म स्वरूप साकार हैं वे निराकार ईश्वर के आधार पर स्थित हैं। (तस्मिन्निदं) यह सब दृश्य जगत् उसी एक ईश्वरसे प्रकट होता और उसी में संगत नाम लीन होजाता है क्योंकि वही सब जगत् के पदार्थों में ओत और प्रोत होरहा है। जैसे पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले वृक्ष वनस्पति मानुष देह घटपटादि पदार्थों में

पृथिवी ओत प्रोत है पृथिवीसे भिन्न वृक्षादि कुछ नहीं है७ पृथिव्यंशों की अवस्था विशेषों के नामरूप वृक्षादि हैं, जैसे सब वृक्षादि पृथिवी में से निकलते और पृथिवी में ही लीन हो जाते हैं वैसे ही यह दृश्यमान जगत् ईश्वर उपादान से प्रकट हुआ और उन्हींमें लय लीन हो जाता है। कपड़ेमें पड़े लम्बे सूत ओत [ताना] कहाते और तिरछे सूत प्रोत [बाना] कहाते हैं, कपड़ेमें सूत ओत प्रोत हैं ऐसा कहनेका अभिप्राय जैसे प्रत्यक्ष सिद्ध यह है कि सूत से भिन्न कपड़ा अन्य कुछ नहीं है किन्तु सूत ही अवस्था विशेष का नाम वा रूप कपड़ा सिद्ध होता है वैसे जगत् में ईश्वर को ओत प्रोत कहने का भी स्पष्ट अभिप्राय यही है कि ईश्वर से भिन्न जगत् कुछ नहीं किन्तु माया के सम्बन्ध से एक अवस्थान्तर को प्राप्त हुआ ईश्वर ही जगत् पदवाच्य कहाता है। इस से जगत्स्वरूप से साकार हुआ ईश्वर अपने निराकार स्वरूप के आधार पर स्थित है। आशा है कि उक्त द्वितीय प्रश्न का उत्तर हमारे पाठक लोग ऊपर लिखे युक्ति प्रमाणों को देख कर समझ गये होंगे इस से इस अंश पर अधिक लिखना व्यर्थ है॥

प्रश्न (३) उस साकार ईश्वरका रूप (रंग ढंग) कैसा है? क्योंकि साकार वस्तु विना किसी रूप (रंग ढंग) के नहीं होता॥

उत्तर (३) यद्यपि इस प्रश्न ३ का भी उत्तर प्रश्न दो में आगया कि ज्योतिरूप ही अग्नि नामक ईश्वर तथा अग्नि नामक ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप ज्योति है तथा ज्योतिःस्वरूप ही सूर्यनामक अन्तर्यामी प्रेरक ईश्वर और प्रेरक अन्तर्यामी सूर्य नामक ईश्वरका ज्योति ही प्रत्यक्षरूप है यह बात ऊपर लिखे (अग्निर्ज्योतिः) मन्त्रमें स्पष्ट दिखा दी है क्योंकि वहां अग्नि और सूर्यगत प्रत्यक्ष ज्योति ही अनुवाद्य तथा अग्नि सूर्य पद वाच्य तत्तदवच्छिन्न ईश्वर देवता विधेय है इन दोनों अनुवाद्य विधेयों का परस्पर तादात्म्य सम्बन्ध दिखाने द्वारा ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्योतिरूप होना सिद्ध हो गया है। तथापि हम इस पर अन्य कुछ विचार दिखावेंगे । प्रश्न कर्त्ता का अभिप्राय यदि यह हो कि (अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्०) इत्यादि प्रमाणों में ईश्वर को रूपादि रहित कहा है तब उस का कोई रूप कैसे हो सकता है ? यदि रूपवाला ईश्वर माना जाय तब उसको अरूप कहना कैसे बन सकता है ? तब इस का उत्तर पहिले तो समाजी महाशय को सोचना चाहिये कि शरीरधारी जीवों का कोई रूप वास्तव में है वा नहीं ? यदि कहो कि रूप है तो समाजी को बताना चाहिये कि चेतन शक्ति स्वरूप जीवका लाल पीला काला कैसा रूप है। यदि

कहो कि जीवका रूप नहीं है तो तुम कैसे कह सकते हो कि स्वर्गवासी स्वा० दयानन्द जी का यह फोटो है वे ठीक २ ऐसे ही थे। यदि कहो कि शरीर का फोटो है जीवका नहीं तब स्वर्गवासी क्या शरीर है वा जीव? जब शरीर पृथिव्यादि तत्त्वों में मिल गया तब स्वर्गवासी अमुक पुरुषका फोटो कहना तुम्हारी कैसी बड़ी भूल है? और जीव रहित केवल मुर्दा शरीर का फोटो देख कर स्पष्ट जान सकते हैं कि यह मुर्दा का है जैसे फोटो पर मुर्दापन प्रतीत हो जाता है वैसे जीव का जीवपन भी जीवित के फोटो पर स्पष्ट दीखता है। इस लिखने से सिद्ध हो गया कि शरीर से भिन्न केवल जीव का जैसे कोई रूप न होने पर भी जैसे २ शरीरोंको जीव धारण करता है वैसे २ सभी रूप उस जीव के शास्त्रानुकूल माने जाते हैं (नैवस्त्री न पुमानेष०) इत्यादि प्रमाणानुसार स्थूल विग्रह से भिन्न जीव के स्त्री पुरुषत्वादि रूपों का निषेध दिखाया और (त्वं स्त्री त्वं पुमानसि०) इत्यादि प्रमाण द्वारा शरीर धारण करने की दशा में उसी का स्त्री पुरुषादि रूप होना भी सिद्ध है क्योंकि जड़मात्र शरीरों में स्त्री पुरुष भाव कदापि संघटित नहीं हो सकता इसीके अनुसार ईश्वर का वास्तविक कोई रूप न होने पर भी माया-मय शरीरों में वा अग्नि वायु आदित्यादिमें उसीके असंख्य रूप हैं इसीलिये—

इन्द्रोमायाभिःपुरुरूपईयते । रूपंरूपंमघवाबोभवीति तदस्यरूपंप्रतिचक्षणाय ॥ ऋग्वेदे-

अग्निर्यथैकोभुवनंप्रविष्टो रूपंरूपंप्रतिरूपोबभूव । तथाह्ययंसर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपोबहिश्च ॥ इति कठशाखायाम् ॥

भावार्थ—इन्द्र नाम रूप परमात्मा अपनी माया के द्वारा संसारमें बहुत रूपों वाला प्राप्त हो रहा है। जैसे अग्नि जितने लम्बे चौड़े वा मोटे काष्ठादि में प्रज्वलित होता है उतना ही लम्बा चौड़ा वा मोटा प्रत्यक्ष दीखता है और वास्तव में उतनी लम्बाई चौड़ाई मुटाई अग्नि की नहीं है तो भी वैसा२ लम्बा आदि दीखता है वा यों कहो कि आकाश वायु जल पृथिवी के विकार काष्ठादि में उन्हीं २ के रूप से अग्नि विद्यमान है वैसे ही मघवा नाम रूपावच्छिन्न परमेश्वर संसारस्थ सभी पदार्थों में उन्हीं २ के रूपों से विद्यमान है परमेश्वर के वे सब रूप कथनादि व्यवहार के लिये हैं क्योंकि यदि वह किसी प्रकार का रूप कभी भी धारण न करै तो वाणी से कुछ भी उसके विषय में नहीं कह सकते और न मन से कुछ विचार कर सकते हैं क्योंकि केवल निराकार निर्गुण ईश्वर में सभी अंशों का निषेध किया है—

यतो वाचो निवर्त्तन्ते—अप्राप्यमनसा सह
न तत्र वाग्गच्छति मनो० इत्यादि—

जिस निराकार परमात्मामें मन वाणीका निषेध है जिस को न वाणी से कह सकते हैं कि वह ऐसा है और न मन से ध्यान में ला सकते हैं उसके विषयमें कथनादि कर सकने के लिये अर्थात् स्तुति प्रार्थनादि द्वारा उसके गुण कीर्त्तन करके अपने कल्याण का उद्योग हम लोग कर सकें इस लिये वह संसार में अनेक रूप धारण करके समय २ पर अनेक काम कर जाता है। जैसे अपने विरोधी जल में भी अग्नि जल के रूप से ही विद्यमान है वैसे परमात्मा भी अपने विरोधी असुर राक्षसादि में भी उन्हीं २ के रूप से विद्यमान है जैसे अग्नि काष्ठादि में विद्यमान रहता हुआ भी जब तक अपने रूप से प्रकट नहीं होता तब तक काष्ठादि को नहीं जला सकता वैसे ही परमेश्वर मनुष्यादि चराचर संसार में व्यापक रहता हुआ भी किसी धर्म विरोधी प्रबल असुरादि हिंसकों का नाश नहीं कर सकता और जैसे अग्नि जब अपने स्वरूप से प्रकट होता है तब अपने विरोधी जल को भी वाष्प रूपसे वा धूम रूपसे नष्ट करके उड़ा देता है वैसे ही परमेश्वर

जब रामकृष्ण कच्छ मच्छादि नाम रूपों में अपने परमेश्वर रूपको धारण करता है तब धर्म विरोधी वेद विरोधी प्रबल रावणादि शत्रुओंका संहार कर डालता है। जैसे अग्नि उस २ पदार्थ में उसी २ के रूप से विद्यमान रहता है वैसे ईश्वर भी रामकृष्ण आदि विग्रहों के रूपों में प्रकट होकर अपना कर्त्तव्य पालन करता है। सब रूपादि से वास्तव में पृथक् होते हुए भी ईश्वर में ही जब सब प्रकार के रूप और सब रंग ढंग हैं तब उस साकार ईश्वर के रूप रंग ढंग और क्या बताये जावें॥

प्रश्न-(४) साकार वस्तु व्यापक हो सकता है या नहीं?

उत्तर-(४) साकार वस्तु व्यापक नहीं होता न हो सकता यह तो सभी जानते और मानते हैं परन्तु इस के साथ ही प्रश्न कर्त्ता को यह दिखलाना था कि साकार के व्यापक न हो सकने से किसी की क्या हानि है वा ऐसा होने पर वेदादि शास्त्रों के मत में क्या विरोध है?। जब किसी की कुछ हानि नहीं तथा किसी मन्तव्यसे कुछ भी विरोध नहीं तब विना रोक टोक ईश्वर को साकार क्यों नहीं मान लिया जाता?। यदि कहो कि साकार व्यापक न होने से एक देशी परिच्छिन्न हो जायगा और

सब विद्वन्मण्डल की अधिकानुमति में ईश्वर दिक्कालाद्यनव॰ च्छिन्न अर्थात् सब दिशा सब भूत भविष्य वर्त्तमान काल और अनन्त महाकाश में सर्वदेशी अपरिछिन्न माना जाता है क्या यह छोटा दोष है ? तो सुनिये समाधान भी हो चुका है कि अग्नि सब पदार्थों में प्रविष्ट उस २ में उसी २ के रूपसे जो उस की विद्यमानता है यही अग्नि की व्यापकता एक प्र॰ कार की है और एक ही काल में असंख्य नगरों जंगलों ग्रामों और घरों में जो अग्नि प्रज्वलित हो रहा है वही अग्नि का साकार परिच्छिन्न स्वरूप है यदि अग्नि के साकार रूप में प्रज्वलित होने से उस की व्यापकता में बाधा पड़जाती तो थोड़ी २ दूरी पर वा समीप २ अनेक स्थानों वा चौकों में अं॰ गीठियों में अग्नि प्रज्वलित न हो सकता पर ऐसा न होकर जहां प्रज्वलित करना चाहो सर्वत्र प्रज्वलित होता प्रत्यक्ष दीखता है इससे स्पष्ट सिद्ध है अग्नि के साकार प्रज्वलित परिच्छिन्न होने से उस की व्यापकता में एक लेशमात्र भी हानि नहीं होती वह अपने सूक्ष्म रूप से सब पदार्थों में निर॰ न्तर एक रस व्याप्त रहता है यहां तक कि अपने साकार स्वरूप में भी सूक्ष्मरूप से अपरिच्छिन्न व्यापक रहता है और प्रज्वलित रूप साकार भी साथ ही साथ बना रहता है।

इसीके अनुसार परमेश्वर भी सूक्ष्मरूपसे अपरिच्छिन्न व्यापक रहता और नाना प्रकार की अपनी विभूतियों में वा अवतारादि विग्रहों में अनेक रूपों से साकार भी होता रहता है एक ही काल में साकार निराकार दोनों स्वरूपोंसे विद्यमान ईश्वर में कुछ भी विरोध नहीं आता क्योंकि उसके साकार परिच्छिन्न होने रूप से व्यापकता ज्यों की त्यों बनी रहती है इस से एक ही ईश्वर के साकार निराकार प्रतिपादक द्विविध प्रमाण सिद्ध रहते हैं ॥

प्रश्न-(५) साकार वस्तु की माप (पैमायश) होती है या नहीं ? यदि होती है तो परमात्मा की लम्बाई चौड़ाई गोलाई ऊंचाई आदि कितनी २ है ? कृपया ठीक २ बतलाइये ॥

उत्तर-(५) हम आप को साकार परमात्मा की लम्बाई चौड़ाई आदि बतलाते हैं आप कृपया ध्यान देकर सुनिये, कठोपनिषद् श्रुति में लिखा है कि——

अणोरणीयान्महतोमहीयानात्मास्यजन्तोर्निहितोगुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥

अर्थ-जो इस शरीरेन्द्रिय संघात के बीच गुप्त रूप से आत्मतत्त्व विद्यमान है वह छोटे से छोटा और बड़ों से भी बड़ा है अर्थात् वह ईश्वर छोटेसे छोटे प्राणियों वा अप्राणियों में छोटे से भी छोटा अर्थात् माया जन्य पदार्थों को सूक्ष्मता से भी परे अति सूक्ष्म है और पर्वत भूगोल सूर्य चन्द्रमण्ड-लादि बड़े २ महत्परिमाण वस्तुओंमें उतना २ ही लम्बा चौड़ा और गोल है चाहे यों कहो कि जैसे में तैसा ही लम्बा चौड़ा और गोल है। सारांश यह कि सभी प्रकार की लम्बाई चौ-ड़ाई गोलाई जो २ संसार के वस्तुओं में है वह सब उसी की है और वह त्रिपाद् अमृत होने से सब से पृथक् भी अनन्त है इस से प्रश्नकर्त्ता जितनी २ लम्बाई आदि चाहें मान लेवें। श्रुति में कहे सूक्ष्म और महत्परिमाण के बीच सभी मध्य परिमाण आगये इस से सभी लम्बाई आदि ईश्वर में सिद्ध हो गयी क्योंकि वह सब में ओत प्रोत है और सब वही है॥

प्रश्न (६) साकार पदार्थ सत् होता है या असत्?।

उत्तर (६) आगा पीछा सोचे विना ही मूर्खताके कारण अपने मत से विरुद्ध यह प्रश्न समाजी ने किया है। क्योंकि समाजी मतमें साकार पदार्थ सभी सत् हैं जिसके मतमें सभी सत है वह ऐसा प्रश्न कदापि नहीं कर सकता और सनातन-

धर्म का सिद्धान्त यह है कि एक ब्रह्म परमात्मा से भिन्न साकार निराकार सभी पदार्थ अपने स्वरूप से असत् हैं एक आत्मतत्व ही सत् पदार्थ है ऐसी दशा में सनातन धर्म के मन्तव्य में भी उक्त प्रश्न नहीं बनता। यदि समाजी कहें कि तुम लोग ईश्वर को साकार मानते हो इस लिये प्रश्न है कि साकार वस्तु परिच्छिन्न होनेसे उत्पत्ति विनाश धर्मक होता है तब तुम्हारा ईश्वर भी उत्पत्ति विनाश धर्म वाला अनित्य माना जायगा। इसका उत्तर संक्षेप से यह है कि तुम समाजी लोग शरीरस्थ जीव को नित्य अवनाशी मानते हो, जैसे स्थूल शरीर में तदाकार हुए जीवका जन्म मरण होने पर भी उसको नित्य अविनाशी अजर अमर मानते हो वैसे ही साकार अवतारादि के शरीरों में साकार होते हुए भी ईश्वर को हम लोग नित्य अविनाशी मानते हैं, इसीके अनुसार साकार शरीरी होने वाले ईश्वर पर जो कुछ दोषारोप वा आपत्ति लाओगे वे सभी दोषारोप वा आपत्तियां शरीरधारण करने वाले जीव पर भी वैसी ही आवेंगी, जीवको नित्य अविनाशी सिद्ध करनेके लिये जो २ समाधान तुम पेश करोगे वे ही सब समाधान साकार ईश्वर को नित्य अविनाशी सिद्ध करने में हम लोगों के लिये भी उपयोगी होंगे। इस कारण इस प्रश्न पर अन्य कुछ लिखना हम आवश्यक नहीं समझते।

प्रश्न (७) यदि ईश्वर मूर्त्तिमान् है तो उसकी मूर्त्ति जलचर, थलचर, नभचर, मकर, मच्छ, मनुष्य, पशु, वराह, परन्द (पक्षी) पहाड़ या वृक्ष के समान है या और किसी प्रकार की है, उसकी मूर्त्ति एक ही दशा में रहती है या कुछ परिवर्त्तन (अदला बदला) भी करती है।

उत्तर (७) सगुण साकार ईश्वर मूर्त्तिमान् है यह बात वेदादि के प्रमाणों से और सहस्रों युक्तियोंसे अब तक सम्यक् सिद्ध हो चुकी है।

उभयं वा एतत्प्रजापतिः परिमितश्चापरिमितश्च निरुक्तश्चानिरुक्तश्च ॥ शतपथब्रा० का०१४।

अर्थ-प्रजापति परमात्मा के दो रूप हैं एक कथन करने योग्य परिमित नाम साकार मूर्त्तिमान् द्वितीय मन वाणी से परे निराकार अकथनीय अपरिमित अमूर्त्ति रूप है। इत्यादि मूर्त्तिमान होने के अनेक प्रमाण हैं। सबसे प्रबल युक्त यह है कि जो २ पदार्थ सूक्ष्म वा अदृश्य हैं वे सभी स्थूल वा दृश्य भी होते दीखते हैं जैसे अग्नि अपने सूक्ष्म अदृश्य रूपसे सबमें व्याप्त है, वही अग्नि अनेक काष्ठादिमें स्थूलरूपसे प्रकट दृश्य होता रहता है अथवा यों कहो कि जो स्थूल हैं वे सदा सूक्ष्म होते रहते हैं और जो सूक्ष्म हैं वे भी सदा स्थूल होते रहते हैं

जैसे स्थूल जल सदा ही सूक्ष्म अदृश्य हो २ कर आकाशको चला जाता और सूक्ष्म जल स्थूल हो २ कर सदा ही वर्षा करते रहते हैं। जो सूक्ष्म निराकार पदार्थ हैं वे यदि साकार न हों तो उन के होने में प्रमाण ही क्या है? अर्थात् उन की सत्ता भी सिद्ध नहीं हो सकती, कुछ लोग कहते हैं कि देखो क्रोध लोभ मोह सुख दुःख बुद्धि आकाशादि अनेक पदार्थ सदा ही सूक्ष्म दशा में रहते हैं ये क्रोधादि कभी मूर्त्तिमान् नहीं होते तौ भी इन सब की सत्ता सर्व सम्मत जैसे सिद्ध है वैसे ही सदा निराकार रहने वाले ईश्वर को मानना चाहिये॥

इस का संक्षेप से उत्तर यह है कि क्रोधादि सभी मूर्त्तिमान् हुए प्रत्यक्ष दीखते हैं। क्रोध लोभ मोह सुख दुःख इत्यादि जिस २ मनुष्य पर प्रबल रूप से प्रकट होते हैं वह मनुष्य क्रोधादि रूप क्रोधादिरूप क्रोधादि की मूर्त्ति साक्षात् दीखता है चाहें यों कहो कि प्रबलता से प्रकट हुए क्रोधादि मनुष्यों पर जब साक्षात् सबको दीखते हैं तब उन को सदा सूक्ष्म अदृश्य रहने वाले कहना मानना भूल है, विशेष बुद्धिमत्ता से सिद्ध होने वाले कामों वा विशेष बुद्धि से बनाये हुए पदार्थों में बुद्धिमत्ता भी मूर्त्तिमती होकर स्पष्ट दीखती है, तथा आकाश भी अनेक प्रकारके कमरों में उतना २ लम्बा

चौड़ा गोल त्रिकोण चतुष्कोण इत्यादि आकारों वाला स्पष्ट दीखता है इस से ये क्रोधादि भी मूर्त्त अमूर्त्त दोनों प्रकार के सिद्ध हैं ॥

अब यह भी देखिये कि उस ईश्वर की मूर्त्ति जलचर स्थलचर नभचर आदि किस के तुल्य है ? इसका संक्षेप से उत्तर यह है कि जल चरादि सभी प्रकार की मूर्त्तियां उस परमेश्वर की शास्त्र से सिद्ध हैं—

झषाणांमकरश्चास्मि । हतोयेनमीनावतारेणशंखः । रामःशस्त्रभृतामहम् । सरसामस्मिसागरः । अश्वत्थःसर्ववृक्षाणाम् । स्थावराणांहिमालयः । वैनतेयश्चपक्षिणाम् । ज्योतिषांरविरंशुमान् । नक्षत्राणामहंशशी । वसूनांपावकश्चास्मि । देवर्षीणांचनारदः । ऐरावतंगजेन्द्राणांनराणांचनराधिपम् । मृगाणांचमृगेन्द्रोऽहम् । पवनःपवतामस्मि । स्रोतसामस्मिजाह्नवी । गायत्रीछन्दसामहम् । ऋतूनांकुसुमाकरः ।

भावार्थः—मकर, मच्छ, रामादि मानुष रूप, जलाशयों में

समुद्र, वृक्षों में पीपल, पहाड़ों में सब से बड़ा तथा ऊंचा हिमालय, पक्षियोंमें गरुड़, ज्योतियोंमें सूर्य,नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, वसुओंमें अग्नि,देवर्षियोंमें नारद,हाथियोंमें ऐरावत,मनुष्योंमें राजा, मृगों में सिंह, शोधकों में वायु, चर जलाशयोंमें गंगा जी, पद्य रचना में गायत्री, ऋतुओं में वसन्त इत्यादि असंख्य मूर्त्तियां उस ईश्वर की हैं, वृक्ष पहाड़ादि सभी प्रकार की साक्षात् ईश्वर की मूर्त्तियां हैं तब वृक्षादि के तुल्य पूछना वे समझी है। यदि कहो कि गीता कोई वेद नहीं है इससे गीता का प्रमाण वेद के तुल्य नहीं होगा तो—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ॥

इत्यादि वेद मन्त्रों में अग्नि, वायु, आदित्य चन्द्रमा आदि भगवान् परमेश्वर के रूप कहे हैं ये मन्त्र में कहे अग्नि आदि ऊपर गीता के वचनों में भी भगवान् के नाम आचुके हैं इस से गीता का सब कथन वेदानुकूल होना सिद्ध है। अब एक बात शेष रही कि "उस की मूर्त्ति एक ही दशामें रहती है या कुछ परिवर्त्तन होता है ?,, इस प्रश्नांश से भी प्रश्नकर्त्ता समाजी का अज्ञान स्पष्ट सिद्ध है क्योंकि समाजी मत में भी मनुष्यादि प्राणियों के शरीर जीवों की मूर्त्तियां हैं, शरीर मूर्त्तियोंकी बाल्य यौवन जरा अवस्थाओंका परिवर्त्तन प्रत्यक्ष

होता है और अन्त में शरीर रूप मूर्त्तियां नष्ट भ्रष्ट हो जाती हैं परन्तु शरीर की दशा बदलने के साथ जीव का परिवर्त्तन जब समाजी लोग भी नहीं मानते और यदि परिवर्त्तन मानें तो जीव को नित्य नहीं मान सकते। तथा शरीर के नष्ट होने के साथ जीवका नाश भी कोई नहीं मानता और शरीर रूप मूर्त्ति का नाश होना प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है इस से यह सिद्ध हो गया कि मूर्त्ति की दशा बदलने पर जैसे मूर्त्तिमान् जीवमें कुछ परिवर्त्तन नहीं होता तथा जैसे शरीर मूर्त्ति का नाश होने पर मूर्त्तिमान् जीव का नाश नहीं होता वैसे ही ईश्वर की मूर्त्तियों की दशा का परिवर्त्तन होने से ईश्वर में कुछ परिवर्त्तन नहीं होता तथा मूर्त्तियों का नाश होने पर मूर्त्तिमान् ईश्वर का नाश नहीं हो सकता। इस प्रकार ईश्वर के अनेक स्वरूप नाम मूर्त्तियां होने पर भी वह सदा नित्य अविनाशी रहता है। इस कारण मूर्त्तिमान् ईश्वर मानने में कुछ दोष नहीं है॥

प्रश्न (८) वेदों में कोई ऐसा मन्त्र बतलाइये कि जिसमें ईश्वर की पाषाणादि मूर्त्ति बनाने की आज्ञा हो॥

उत्तर (८) अभी सातवें प्रश्न के समाधान में अनेक मूर्त्तियां नाम ईश्वर के अनेक साकार रूप हम दिखा चुके हैं तथा मूर्त्ति पूजा मण्डन सम्बन्धी लेखों और पुस्तकोंमें अनेक प्रमाण अब तक दिये जा चुके हैं उनको समाजियों ने नहीं माना इससे आगे भी यह लोग अपना हठ नहीं छोड़ेंगे तथापि हम पाठकों के लिये दिखावेगे। शुक्ल यजुर्वेदके अ० ३६ में तथा शतपथ ब्राह्मण काण्ड १४में ईश्वर प्रजापतिकी दशाङ्गुल परिमाण महावीर नामक प्रतिमा मट्टी से बनाने को लिखा है (इयत्यग्रआसीत्) इस मन्त्र पर शतपथमें इयती पदका अर्थ प्रादेशमात्र दशाङ्गुल किया गया है। वेद में पृथिवी को ईश्वर का पग कहा है, उपास्य गुरु आदि के पगों की आराधना सेवा पूजा करने का विधान प्रसिद्ध है, वह ईश्वर से पग रूप पृथिवी की वेदोक्त पूजा से ही निकला है, पृथिवी रूप ईश्वर के पग का विस्तार बहुत है इससे सब पृथिवी की पूजा एक साथ हो सकना असम्भव है इसी लिये पृथिवी के अंश रूप मूर्त्तियों की पूजा चली है। वेद में ईश्वर के मुख आंख कान आदि सब अंग स्पष्ट लिखे हैं(मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव) हे परमेश्वर तुम्हारे तीनों नेत्रों को बार २ नमस्कार है। सभी लोग जानते हैं कि किसी निराकार वस्तु में मुखादि अंग हो नहीं सकते वा यों कहो कि मुखादि अंगोंवाला

होना ही साकार वा मूर्त्तिमान होना है वैसे अंगों वाले मूर्त्तिमान् की स्तुति भी स्पष्ट ही लिखी है वह स्तुति भी पूजा पद का अर्थ है क्योंकि षोडश प्रकारसे होने वाली आराधना पूजा कहाती है इससे सिद्ध हुआ कि वेद के सहस्रों मन्त्र मूर्त्तिमान् ईश्वर की मूर्त्तिपूजा के प्रमाण विद्यमान हैं। ऐसी दशा में एक दो प्रमाण पूछना भूल है क्योंकि मूर्त्तिपूजा के वेदमें सहस्रों प्रमाण हैं चाहें यों कहो कि समाजियोंकी मानी हुई चार संहिताओं में अधिकांश मन्त्र साकार मूर्त्तिमान् ईश्वर के ही प्रतिपादक हैं और निराकार की प्रतिपादिका श्रुतियां उपनिषद्रूप वेदान्त ग्रन्थों में विशेषकर आती हैं जिनको समाजी लोग वेद नहीं मानते।

मन्त्र संहिताओंमें प्रायः विधिवाक्य नहीं हैं किन्तु विधिवाक्य विशेष कर ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं इस से विधि चोदना तथा आज्ञा देने वाले वाक्य मन्त्र संहिताओं में समाजी लोग भी नहीं दिखा सकते। यदि समाजियोंसे कोई पूछे कि पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नाम करण, इत्यादि संस्कार की आज्ञा और जिस २ समय जिस २ रीति से पुंसवनादि करने चाहिये उन का पूरा २ विधान मन्त्रसंहिता वेद से दिखाओ तो कभी जन्मान्तर में भी उक्त प्रकार के प्रमाण नहीं दिखा सकते इससे वेद मन्त्र की आज्ञा मूर्त्ति बनानेमें मांगना भी वे समझी है॥

मूर्त्तिपूजाके अनेक प्रमाणों में आर्यसमाजियों के परम-मान्य व्याकरण के आचार्य पाणिनि और पतञ्जलि मुनि का प्रमाण भी अत्यन्त पुष्ट है। ये सब प्रमाण मूर्त्ति पूजा मण्डनादि अनेक पुस्तकोंमें छप भी चुके हैं। पाणिनीय अष्टाध्यायी व्याकरण-अ० ५ पाद ३ सूत्र ९९। १००।

जीविकार्थे चापण्ये ॥ ९९॥ देवपथादिभ्यश्च ॥१००॥

काशिका—जीविकार्थं यदपण्यं तस्मिन्नभिधेये कनोलुब्भवति विक्रीयते यत्तत्पण्यम् वासुदेवस्य प्रतिकृतिः [प्रतिमा—मूर्त्तिः] वासुदेवः शिवस्य प्रतिकृतिः शिवः स्कन्दः विष्णुः आदित्यः। देवलकादीनां जीविकार्था देवप्रतिकृतय उच्यन्ते । अपण्यइति किम् हस्तिकान् विक्रीणीते देवपथादेरेवायं प्रपञ्चः ॥

अर्चासुपूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च ।

इवेप्रतिकृतौलोपः कनोदेवपथादिषु ॥

अर्चासु तावत्—शिवः विष्णुः । चित्रकर्मणि—अर्जुनः । दुर्योधनः । ध्वजेषु—कपिः गरुडः कपिध्वजः गरुडध्वजः ॥

महाभाष्यम्–यास्तु संप्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति [कनो लुप्] ॥

भावार्थः–जीविका के लिये जो हो और बेचा न जावे ऐसे अर्थ में कन् प्रत्यय का लुप् हो। वासुदेव नाम कृष्ण भगवान् की जो प्रतिकृति नाम पूजनार्थ बनायी मूर्त्ति उस का नाम भी वासुदेव हुआ। वैसे ही शिव की मूर्त्ति शिव कहाती है। देवलकादि नाम पुजारी आदि की जीविकार्थ बनायीं देव मूर्त्तियां यहां वासुदेवादि पदवाच्य हैं। यदि वे मूर्त्तियां बेची जातीं तो–वासुदेवकः शिवकः। ऐसे शब्द बनते। और जिन हस्ती आदिके खिलौनों को बना २ कर कारीगर लोग बेचते हैं उनके वाचक शब्दोंमें कन् प्रत्ययका लुप् नहीं होगा किन्तु वहां हस्तिकः। अश्वकः–ऐसे रूप होंगे जो देवतादि की मूर्त्तियां जीविकार्थ तो हों पर बेची न जावें ऐसी मूर्त्ति पूजाके लिये ही बनाई जाती थीं और अब भी बनती हैं। इसीलिये महाभाष्य-कार पतञ्जलिमुनिने लिखा है कि (यास्तु संप्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति) विष्णु आदि देवोंकी जो मूर्त्तियां पूजा करने के लिये बनायीं जाती हैं उनके वाचक शब्दोंसे कन्प्रत्यय का लुप् हो जायगा। मन्दिरों में देवों को कुछ धनादि अर्पण किये जाते हैं इस से पुजारी वा पण्डा लोगों की जीविका

होना प्रसिद्ध है परन्तु मन्दिरादि में स्थापित की हुई देवप्रतिमादि बेची नहीं जाती हैं इससे वे जीविकार्थ अपण्य कहाती हैं। प्राचीन समय में अनेक उत्तम चित्र बनाकर किसी एक स्थान में रक्खे जाते थे उन चित्रों का दर्शन करा २ कर लोग जीविका किया करते थे, उन तसवीरों में भी कन् प्रत्यय का लुप् होता है। तथा कपि हनुमान जी की प्रतिमा भी कपि कही गई है वह कपि जिनकी ध्वजा में था उन वीर अर्जुनका नाम कपिध्वज हुआ तथा जिन कृष्णभगवान् की ध्वजा में गरुड़ की प्रतिमा थी उनका नाम गरुड़ध्वज रक्खा गया है इस प्रकार पाणिनीय व्याकरण में सभी जड़ चेतन पदार्थोंकी प्रतिमा नाम तसवीरों का विचार होने पर भी विशेष कर देव प्रतिमा अपण्य जीविकार्थ होने से महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि के उपरोक्त प्रमाणानुसार पूजनार्थ मानी जाती हैं इस से यह भी सिद्ध है कि यह मूर्त्तिपूजाकी परम्परा पाणिनि पतञ्जलि आचार्यों के वर्त्तमान काल से बहुत पहिले से चली आती है॥

प्रश्न (९)-जिस प्रकार वर्त्तमान समयमें पाषाणमूर्त्ति को भोगविलास कराते हैं, वह कौनसे वेदमन्त्रों की आज्ञा है?॥

उत्तर (९) जिन मन्त्रों से समाजी लोग विधानको लात

मारकर मनमानी रीति से होम कराते हैं, सो उन मन्त्रों से होम कराने की आज्ञा किस वेदमन्त्र में दी है? सो समाजी को बताना चाहिये। तथा जातकर्मादि संस्कार और विवाह यज्ञोपवीतादि कर्म अमुक २ मन्त्र से कराना चाहिये ऐसी आज्ञा जिस वेद मन्त्र में दी हो उसको समाजियों से पूछना चाहिये। यदि समाजी लोग ऐसे मन्त्र नहीं दिखा सकते तो समाजियों के मन्त्र पढ़के होने वाले सभी कर्म वेद विरुद्ध हो गये। अर्थात् सब बातों में वेदमन्त्र की आज्ञा पूछने का प्रयोजन यही हो सकता है कि विनियोज्य विनियोजक वा विधेय विधायक दोनों प्रकारके मन्त्र होने चाहिये सो इसके लिये समाजी लोग निराकार ईश्वरसे कहकर नया वेद बनवावें सो हो सकता है। पहिले से बना वेदों का मन्त्रभाग सब ऋषियों ने अब तक विनियोज्य वा विधेय माना है तथा ब्राह्मणरूप वेदभाग उन मन्त्रों का विनियोजक वा विधायक है सो यह रीति श्रौतकर्मों में है और स्मार्त्त कर्मों में गृह्यसूत्रकारों के वचन वा स्मृतियों के श्लोक ही मन्त्रों के विनियोजक हैं इसी कारण उन कर्मों का स्मार्त्त नाम हुआ है, संस्कारविधि पुस्तक में स्वा० दयानन्द जी ने भी गृह्यसूत्रकारों की आज्ञानुसार ही प्रायः उन २ कर्मों में

उन २ मन्त्रों का विनियोग किया है। स्वा० द० जीको कोई वेदमन्त्र ऐसा नहीं मिला जिसमें यह आज्ञा होती कि अमुक२ मन्त्र से अमुक २ कर्म करें।

हमारी सम्मति तो यह है कि समाजी लोग स्वा० द०की संस्कारविधि को अब रद्दी में फेंकदें और एक नया संस्कार विधि पुस्तक बना डालें जिसमें गृह्यसूत्रादि को तिलाञ्जलि देकर केवल वेदमन्त्रोंकी आज्ञासे ही सब काम लिखे जावें॥

यदि समाजी लोग कहें कि पारस्कर आश्वलायनादि आचार्यों के कहे विनियोगों को हम लोग भी मानते हैं तो फिर मूर्त्ति को भोग विलास कराने की आज्ञा का वेदमन्त्र पूछना बेसमझी है क्योंकि स्मृति वा गृह्यसूत्रकार ऋषियोंकी विनियोगरूप आज्ञा को मानकर जैसे तुम लोग उन २ मन्त्रों से उन २ कर्मों को करते हो वैसे उन्हीं ऋषियोंकी विनियोग रूप आज्ञा को मानते हुए सनातनधर्मी लोग भी उन २ वेद मन्त्रों के मूर्त्तिद्वारा भगवान्‌की आराधना उपासनारूप पूजा करते हैं। पारस्करगृह्य के कात्यायनपरिशिष्ट सूत्र में लिखा है कि——

ब्राह्मवैष्णवरौद्रसावित्रमैत्रावरुणैस्तल्लि-ङ्गैर्मन्त्रैरर्चयेत्॥

भावार्थ-ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र [शिव] सविता, मित्र, वरुण, इत्यादि देवताओं के चिन्ह वाले मन्त्रों से उन २ देवों की प्रतिमाओं का पूजन करे अर्थात् ब्रह्मादि देवों के नाम और उनका वर्णन जिन २ वेदमन्त्रों में हो उन २ मन्त्रों से उन २ देवप्रतिमाओं का षोडशोपचार पूजन करै। योगी याज्ञवल्क्य और महर्षि पराशर ने भी अपने २ धर्मशास्त्रों में देवप्रतिमा पूजन के लिये मन्त्रों का सामान्य विनियोग स्पष्ट दिखाया है॥

ब्राह्मवैष्णवरौद्रैस्तु सावित्रैर्मित्रवारुणैः।
तल्लिङ्गैरेवमन्त्रैस्तु अर्चयेत्सुसमाहितः॥ १॥
ब्रह्माणंवैधलैर्मन्त्रै-र्विष्णुंस्वैःशंकरंस्वकैः।
अन्यानपितथादेवा-नर्चयेत्स्वीयमन्त्रकैः॥ २॥

यह तो सामान्य विनियोग है, उक्त दोनों श्लोकों का अर्थ वही है जो ऊपर लिख दिया है। अब आगे विशेष विनियोग का विचार भी दिखाते हैं।

आद्ययाऽऽवाहयेद्देव-मृचातुपुरुषोत्तमम्।
द्वितीययाऽऽसनं दद्यात्पाद्यं चैवतृतीयया॥३॥

अर्घ्यश्चतुर्थ्यादातव्यः पञ्चम्याचमनंतथा ।
षष्ठ्यास्नानंप्रकुर्वीत सप्तम्यावस्त्रधौतकम् ॥४॥
यज्ञोपवीतंचाष्टम्या नवम्यागन्धमेवच ।
पुष्पंदेयंदशम्यातु एकादश्याचधूपकम् ॥५॥
द्वादश्यादीपकंदद्यात्त्रयोदश्यानिवेदनम् ।
चतुर्दश्यातुताम्बूलं पञ्चदश्याप्रदक्षिणाः ॥६॥
षोडश्योद्वासनंकुर्याच्छेषकर्माणिपूर्ववत् ।
तत्रसर्वंजपेद्भूयः पौरुषंसूक्तमेवच ॥ ७ ॥

भावार्थ-पाराशर स्मृति में विशेष कर वाजसनेयी लोगों के लिये पञ्च देवों का षोडशोपचार पूजन (सहस्रशीर्षा०) आदि पुरुषसूक्त की सोलह ऋचाओं के विनियोग द्वारा दिखाया है। इस से यह सिद्ध हो गया कि जिन २ वेद मन्त्रों के विनियोग से देव मूर्त्तियों का पूजन ऋषियों ने कहा है उन्हीं २ वेदमन्त्रों की आज्ञासे सर्व व्यापकत्वेन मूर्त्तिस्थ भगवान् को सनातनधर्मी लोग सन्तुष्ट प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं क्योंकि मूर्त्ति द्वारा भगवान् की पूजा पक्षमें उन मन्त्रों का अर्थ वैसा ही हो सकता है, वेद मन्त्र कामधेनु हैं इस से उनके मन्त्रों इष्ट साधन सम्बन्धी अनेकार्थ महर्षि लोगों ने

मानकर ही अनेक कर्मों में विनियोग किये हैं अर्थात् जिन २ अंशों का प्रकाशक मन्त्र होता है उन्हीं २ कर्मों के करने में उस २ मन्त्र का विनियोग करने की परम्परा प्राचीन कालसे चली आती हैं। इस से वे सभी मन्त्र भगवान् परमात्माकी षोडशोपचार रूप पूजा के प्रमाण माने जाते हैं। इस नवम प्रश्न में "पाषाण मूर्त्ति को भोग विलास कराते हैं,, ऐसा लेख समाजी ने अपनी हृदय की कुटिलता वा दुष्ट भाव का परिचय देते हुए लिखा है क्योंकि पाषाण मूर्त्तिको भोग विलास कराना कोई मूर्ख भी नहीं मानता और समाजियों के परम गुरु स्वा० दयानन्द जी ने भी मुसलमानों का खण्डन करते हुए अपने सत्यार्थ प्रकाश में यही लिखा है कि "हिन्दु लोग भी बुतपरस्त नहीं हैं किन्तु मूर्त्तियोंके द्वारा ईश्वर देवता की पूजा करते हैं,, इस कारण प्रश्नकर्त्ता समाजी का "पाषाण मूर्त्तिको भोग विलास कराते हैं,, ऐसा आक्षेप स्वा० दयानन्द जी के कथन से भी विरुद्ध है और सनातनधर्म का तो स्पष्ट रूप से मन्तव्य यही है कि संसार के उन २ सूर्य चन्द्र पृथ्वी पत्थर आदि नाम रूप मूर्त्त पदार्थों में उन नाम रूपोंके द्वारा एक साक्षी सर्वनियन्ता भगवान् परमात्मा की पूजा भक्ति उपासना करो इसी से तुम्हारा कल्याण होगा क्योंकि उन २

पदार्थों में उन २ के नाम रूपसे ही परमेश्वर विद्यमान है कि जैसे सभी पार्थिव पदार्थों में घट पटादि नाम रूप से पृथ्वी से पृथक् स्वतन्त्र पदार्थ देखना मानना अज्ञान है वैसे ही ईश्वर भावना को छोड़ के पाषाणादि मूर्त्तियों को पृथक् स्वतन्त्र पाषाणादि रूप से देखना मानना भी अज्ञान है। इस से सिद्ध होगया कि भगवान् परमात्मा को सर्वत्र उस २ पदार्थ में उस २ के रूपसे देखना जानना मानना पूजना ही एकमात्र उसको सर्व व्यात देखने मानने का साधन है अर्थात् मूर्त्ति पूजक मनुष्य ही भगवान् परमात्मा को सर्वत्र व्यात मान सकता है।

वास्तव में मूर्त्ति पूजा एक बड़े महत्व का काम है जिसके द्वारा ही मनुष्य को उच्च कोटि का ज्ञान प्राप्त हो सकता है, यदि समाजी लोगों से कोई पूछे कि जब तुम अपने मान्य वा पूज्य गुरु वा माता पितादि का आदर सत्कार पूजा सेवा करते हो तब क्या यह मानते हो कि हम चर्म, हड्डी, मांस, रुधिर, मल मूत्रादि को भोग विलास कराते हैं ? क्योंकि जैसे तुमको मूर्त्ति में पत्थर प्रत्यक्ष दीखता है वैसे गुरु आदि की शरीर मूर्त्ति में चर्मादि प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध हैं। यदि इस में सन्देह हो तो समाजी महाशय डाक्टर साहब से पूछ लेवें

क्योंकि वे मुर्दा शरीरों को काट २ कर देखते रहते हैं। वास्तवमें शरीर मूर्त्तियों की पूजा करने में मांस हड्डी रुधिरादि को ही भोग विलास कराना तुमको मानना ही पड़ेगा क्योंकि भोग विलासों के मिलने पर शरीर हृष्ट पुष्ट दीखता और न मिलने पर क्षीण दुर्बल दीखता है इस से सिद्ध हुआ कि जो समाजी लोग चेतन शरीर मूर्त्तियों की पूजा करते मानते हैं वे निस्सन्देह मांस हड्डी मल मूत्रादि को भोग विलास कराते हैं ऐसी दशामें पाठक महाशयो! आप लोग सोच विचार करें कि समाजी लोग मांस हड्डी चर्मादि को तो भोग विलास करावें और वैसा कर्त्तव्य उचित मानें तथा पाषाण मूर्त्ति [जो मांस रुधिरादि की अपेक्षा अतिपवित्र है उस] के भोग विलास पर आक्षेप करें ?। यदि शरीरस्थ जीवको भोग विलास कराना मानेंगे तो जीव का घटना बढ़ना सिद्ध होने से वह अनित्य सिद्ध होगा। यदि जीवकी प्रसन्नता मात्र का नाम भोग विलास मानेंगे तो मूर्त्तिस्थ ईश्वर की प्रसन्नता मानने में समाजियों का पेट क्यों पिड़ाता है ?। इससे ऐसा आक्षेप समाजी लोग आगे न करें तो उन के लिये भी यही अच्छा है, यदि न मानेंगे तो इससे भी अधिक प्रबल आक्षेपों की चोटें उनको भी सहने पड़ेंगी।

प्रश्न (१०) धर्म सभा जिन २ पुस्तकों को प्रामाणिक मानती है उनमें पाषाणादि मूर्त्ति पूजाका खण्डन है या नहीं?

उत्तर (१०) वास्तव में इस विषय के समाजी कृत सभी प्रश्न अज्ञानान्धकार से ठसाठस भरे हुए हैं। क्योंकि कोई भी सनातनधर्मी पाषाणादि से बनी मूर्त्तियों को पूज्य नहीं मानता किन्तु उन २ मूर्त्तियों के द्वारा उन २ के अधिष्ठाता ईश्वर का पूजन सभी मानते हैं और वैसा ही करते भी हैं श्रुति स्मृति पुराणों के मूर्त्ति पूजा प्रतिपादक वचनों का भी यही अभिप्राय है और स्वा० द० जी ने भी सत्यार्थप्रकाश में यही लिखा है कि मुसलमान लोग जैसे मक्के की ओर मुख करके ही खुदा की स्तुति करते हैं वैसे हिन्दु लोग भी मूर्त्ति के द्वारा ईश्वर की पूजा करते हैं ऐसी दशामें हिन्दु यदि बुतपरस्त हैं तो मुसलमान लोग उनसे भी बड़े बुतपरस्त क्यों नहीं हैं ? अब पाठक महाशय सोचें कि ऐसा सिद्धान्त स्थिर होने से समाजी के सभी प्रश्न निर्मूल खण्डित होजाते हैं या नहीं ? अर्थात् अवश्य खण्डन होजाता है। धर्म सभा जिन२ पुस्तकों को प्रामाणिक मानती है उनमें ऊपर लिखे प्रकारकी पाषाणादि मूर्त्ति पूजाका खण्डन कहीं भी नहीं किन्तु सभी ग्रन्थोंमें मण्डन अवश्य विद्यमान है। किन्तु समाजी लोगों

के अज्ञान ग्रस्त विचारों का खण्डन तो सभी वेदस्मृति और पुराणों में अवश्य किया गया है कि जैसे जो मनुष्य माया वा प्रकृति को वा मायाजन्य पदार्थों को पूज्य वा उपास्य जानता मानता है वह अज्ञानग्रस्त होकर अधोगति को प्राप्त होता है जैसे आर्यसमाजी माता पिता गुरु आदि के शरीरों को पूज्य मानते वा कहते, हैं तब इसका नाम चर्म मांस रुधिर हड्डी आदि मूर्त्ति की पूजा कहावेगी वा यों कहो कि समाजियों को मल मूत्रादि मूर्त्ति पूजा है क्योंकि नाना प्रकार के मल मूत्रादि संघात ही मनुष्यादि का शरीर है उसको पूज्य मानना ही मल मूत्रादि की मूर्त्ति पूजा है। व्यास जी ने योग भाष्यस्थ अविद्या के लक्षण में अशुचि में शुचि बुद्धि रूप अविद्या का उदाहरण देते हुए लिखा है कि-

स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निस्यन्दान्निधनादपि ।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिताह्यशुचिंविदुः ॥

अर्थ-स्थान, बीज, उपष्टम्भ, निस्यन्द, निधन, आधेयशौच इन छः कारणों से मनुष्यादि के काय नामरूप शरीर को पण्डित लोग वास्तविक अशुचि मानते हैं कि यह शरीर अशुचि है इसमें स्नानादि करके शुद्ध पवित्र होजाने की वासना ही अशुचि में शुचि बुद्धि होना रूप अविद्या है।

१-स्थान अनेक प्रकार के मल मूत्रादि से भरा हुआ गर्भाशय इन शरीरों की उत्पत्ति का स्थान है। २-बीज जिन शुक्रशोणितों के निकलने पर स्त्री पुरुष अपवित्र हो जाते हैं इसीसे मासिक धर्म होने के समय तीन दिन तक स्त्री का स्पर्श भी निषिद्ध है क्योंकि उन दिनोंमें वही बीजरूप शोणित छंट २ कर निकलता है, इन अपवित्र शुक्रशोणित रूप बीज से इस शरीर की उत्पत्ति होती है। ३-उपष्टम्भ-गर्भिणी स्त्री के खाये पिये अन्न जल से जो रुधिर का पूर्व रूप पहिला रस धातु बनता है वही गर्भ शरीर का उपष्टम्भक नाम पोषक है अर्थात् जिस रस धातु से शरीर का पोषण होता है वह स्वयं अपवित्र है इस से भी शरीर अशुद्ध है-

मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाड़ी सम्बद्धा तयाऽऽहाररसमुपजीवति।

सुश्रुत के शारीरस्थान में लिखा है कि गर्भिणी माता की रसवहा नाड़ी में गर्भ की नाभि में लगी नाड़ी बन्धी होती है उसी से आहार रस ले २ कर गर्भ पुष्ट होता है इससे यही उपष्टम्भ संबद्ध अशुद्धि है। ४-निस्पन्द शिर में सात, नीचे दो इन नौ छिद्रों से प्रत्येक समय मलिनता निकला करती है यदि यह शरीर शुद्ध होता तो प्रतिक्षण इसमेंसे मलिनता क्यों

निकलती ? । ५-निर्धन किसी मनुष्य के मरजाने पर मुर्दा शरीर का स्पर्श वा दाह करने वालों को दश दिन की अशुद्धि लगती है इससे भी काय शरीर का अशुद्ध होना सिद्ध है। ६-आधेयशौच-धर्मशास्त्रों में शरीर शुद्धि का विधान कि अमुक २ समय इस २ प्रकारसे इसकी शुद्धि करनी चाहिये सो अशुद्ध को ही शुद्ध करना बन सकता है इससे यह काय नामक शरीर स्वभाव से ही अपवित्र है इस को पवित्र या पूज्य कहना मानना अविद्या है इस से सिद्ध हुआ कि माता पितादि की शरीर मूर्त्तियोंको पूज्य वा पवित्र मानने का पक्ष जो आर्यसमाजियों का है इसका खण्डन सभी वेदादि ग्रन्थों में किया गया है (यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके०) इसमें भी मातादि के शरीरों को पूज्य मानने वाले समाजियों का ही खण्डन है जिस का विशेष विचार हम आगे लिखेंगे। व्यास जीने काय नाम कर्म जन्य शरीरोंको अपवित्र सिद्ध करते हुए यह दिखाया है कि प्रकृष्ट सत्वोपात्त अवतारादिके दिव्य शरीर वैसे नहीं हैं इसी से उनकी प्रतिकृति प्रतिमा पूजनीय हैं। सारांश यह निकला कि हमारी अभिमत मूर्त्ति पूजाका वेदादि सभी ग्रन्थों में मण्डन मात्र किया है खण्डन कहीं भी नहीं परन्तु समाजियों की मानी हुई मांसास्थि मूर्त्ति पूजाका सभी ग्रन्थोंमें खण्डन अवश्य है॥

प्रश्न (११) क्या गुरुमन्त्र गायत्री में परमात्मा का कोई ऐसा भी नाम मिला है कि जिस से ईश्वर का साकार होना प्रकट हो ॥ १ ॥

उत्तर (११) गुरुमन्त्र कोई एक नहीं गायत्री भी एक छन्दोजाति है । किसी एक मन्त्र को गायत्री गुरु मन्त्र समझना वा कहना समाजी का अज्ञान है तथापि हम एक ही मन्त्रको मानकर उत्तर देते हैं कि सविता और देव दोनों ही नाम ईश्वर का साकार होना सिद्ध करते हैं क्योंकि सविता शब्दका अर्थ प्रेरक है निराकार वस्तु कभी किसी का प्रेरक हो नहीं सकता, प्रेरणा एक क्रिया है क्रिया वाला द्रव्य विकारी होता है, निराकार वस्तु सदा निष्क्रिय अविकारी माना जायगा और प्रेरक सविता सक्रिय होने से निर्विकल्प साकार माना जायगा । देव शब्द के अर्थ दान दीपन द्योतन और द्युस्थिति हैं दानादि चारों क्रिया हैं दानादि क्रिया भी साकार में तो होसकती है निराकार में नहीं इससे भी साकार होना सिद्ध है । निराकार वस्तु में देना लेना कुछ भी नहीं घट सकता (अग्निमीडेपुरोहितम्०) इत्यादि वेद के आरम्भ से समाप्ति पर्यन्त परमेश्वरके सहस्रों नाम उस का साकार होना प्रकट करते हैं । जो अग्नि नामरूप परमेश्वर पुरोहित नाम

समक्ष में स्थापित है जो होता है किन्तु अध्वर्यु आदि नहीं, अन्य देवोंका आह्वाता होता कहाता है इत्यादि नामों से उस का साकार होना सिद्ध है । निराकार के प्रतिपादक नाम वेदसंहिताओं में प्रायः नहीं हैं किन्तु उपनिषदों में निराकार द्योतक अनेक नाम अवश्य आते हैं वहां भी साकारता प्रतिपादक अनेक नाम हैं । जब कि सभी वेदोक्त नाम ईश्वर की साकारता साफ २ दिखा रहे हैं (तदेवाग्निस्तदादित्य०) इस मन्त्रमें तत्पदवाच्य निराकार परोक्ष ब्रह्म ही अनुवाद्य है और अग्नि आदि साकार नाम रूप विधेय है तब यह अभिप्राय निकला कि जो परोक्ष निराकार ब्रह्म है वही अग्नि आदि नाम रूपसे साकार हुआ विद्यमान है इससे उस का साकार होना वेद प्रमाण से सिद्ध है ॥

प्रश्न (१२) यदि वह साकार है तो साकार की भांति प्रत्यक्ष रूप में क्यों नहीं दीख पड़ता ? ॥

उत्तर (१२) वह साकार अवश्य है और साकारके तुल्य अच्छे उपासकोंको प्रत्यक्ष दीखता भी है । जब वेद में साफ २ लिखा है कि (तद्वायुः) वही वायु नाम रूप से विद्यमान है (मातरिश्वानमाहुः) अन्तरिक्ष में गमनागमन करने वाले वायु नामरूप से भी उसी एक सद् वस्तु को समझदार लोग

कहते मानते हैं । (नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि) इस मन्त्र में वायु नाम रूपसे ब्रह्मको प्रत्यक्ष कहाहै यदि परमेश्वर प्रत्यक्ष न होता तो मन्त्रमें स्पष्ट ही शब्दसे न कहा जाता त्वगिन्द्रिय द्वारा वायु सबको प्रत्यक्ष प्रमाणसे सदैव अनुभूत होता है (तदादित्यः) वह आदित्यरूप है (आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः) वेद और वेदान्त का आदेश है कि आदित्य नाम रूप से विद्यमान ज्योति साक्षात् ब्रह्म है क्या आदित्य सब को प्रत्यक्ष नहीं है ? जिन आर्यसमाजी वा माया जाल के प्रपञ्च में फँसे काम क्रोध लोभ की प्रबल वासनाओं से ग्रस्त अन्य लोगों को भगवान् प्रत्यक्ष होने पर भी प्रत्यक्ष नहीं दीखता तो इसमें देखने वालों का ही दोष है ॥

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति (निरुक्ते) नोलूकोऽप्यवलोकतेयदि दिवासूर्यस्य किं दूषणम् । (नीतौ) विमूढानानुपश्यन्ति पश्यन्तिज्ञानचक्षुषः । यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनंपश्यन्त्यचेतसः (गीतायाम्) उतत्वःपश्यन्नददर्श इति वेदे । यएष आदित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यकेशः हिरण्यश्मश्रु राप्र-

यांखात्सर्वएव सुवर्णस्तस्य हिरण्मये चक्षुषी इति छान्दोग्योपनिषदि ॥

निरुक्तकार यास्काचार्य ने लिखा है कि यदि किसी वृक्षादि स्थिर पदार्थ को अन्धा पुरुष नहीं देख सकता तो यह उस वृक्ष का दोष नहीं किन्तु किसी अपराध से अन्धा हो जाना यह अन्धे का ही दोष है वैसे ही ईश्वर के प्रत्यक्ष साकार विद्यमान होते भी जिनको नहीं दीखता उन्हीं का अपराध है। नीतिशतक में लिखा है कि यदि उल्लू पक्षी दिनमें नहीं देखता तो इसमें सूर्यनारायण का क्या दोष है? अर्थात् कुछ नहीं, उल्लू के कर्मों का दोष है जिनके कारण उसे दिन में कुछ नहीं दीखता। इसीके अनुसार हम लोगों की आंखों में विषयवासना का जाला छा गया है जो कुछ काल तक निरन्तर ज्ञानाञ्जन-शलाका फेरनेसे दूर हो सकता है। भगवद्गीता में भी लिखा है कि मोहअज्ञानान्धकार में पड़े हुये मनुष्य उसे नहीं देखते परन्तु ज्ञान चक्षु वाले देखते हैं। चञ्चल चित्त वाले लोग यत्न करते हुए भी ईश्वर को नहीं देखते। वेद में लिखा है कि भक्ति ज्ञान वैराग्यसे शून्य अविद्वान् लोग देखते हुये भी उस वस्तु के वास्तविक स्वरूप को नहीं देख पाते। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि जो यह आदित्य मण्डल में

स्वर्णके तुल्य शोभावाला साकार पुरुष दीखता है जिसके सुनहले केश श्मश्रु और आंख हैं जिसका नख शिख से लेकर सभी शरीर सुवर्ण के तुल्य शोभित है यदि ऐसा साकार स्वरूप कभी किसी को प्रत्यक्ष न दीख सकता तो छान्दोग्य में वैसा कदापि न लिखा जाता। कामान्ध पुरुष को संसार की सब स्त्रियां अन्य ही प्रकारसे दीखती हैं। प्रतिदिन आंखों में धर्माञ्जन लगाने वाले धर्मात्मा पुरुषों को अन्य की स्त्रियां माता के तुल्य दीखती हैं। क्रोधान्ध पुरुष को मित्र भी शत्रु रूप दीखता है। कल्पना को ही सत्य जानने मानने वाले संसारी अज्ञ पुरुषों को वस्त्रों में सूत से भिन्न कुछ न होने पर भी वस्त्र ही दीखते हैं वास्तविक सूत नहीं दीखता, सुवर्ण के आभूषणों में सुवर्ण से भिन्न कुछ भी न होने पर भी आभूषण ही दीखते हैं सुवर्ण नहीं दीखता। मट्टी से बने अन्त्य में भी मट्टी हो जाने वाले घटपटादि पदार्थोंमें घटादिपन ही दीखता है किन्तु मट्टीरूप सब नहीं दीखते। अर्थात् प्रत्यक्ष संसारमें भी जब प्रायः मनुष्योंको वास्तविक तत्त्व नहीं दीखता किन्तु जो नहीं है, वही दीखता है तो जिस अज्ञान की प्रबलता से संसार में कुछका कुछ दीखता है उसी अज्ञानान्धकार से आच्छादित होने के कारण संसार में अनेक रूपों से साकार

विद्यमान ईश्वर भी हम लोगों को प्रत्यक्ष नहीं दीखता इस के लिये ज्ञानी चिकित्सकों का सत्संग कर २ के अज्ञान महारोग का औषध करना चाहिये । कि जिससे भगवान् परमात्मा प्रत्यक्ष दीखने लगे तो संसार के सभी असंख्य भय और दुःख मिटजावें और अनन्त आनन्द प्राप्त हो सके ।

प्रश्न-(१३) परमात्मा साकार और निराकार दोनों प्रकार का हो सकता है या नहीं ? या इन दोनों बातों में विरुद्धता है ।

उत्तर-(१३) एक ही काल में परमात्मा साकार निराकार दोनों प्रकार का हो सकता है, हो चुका है अब भी वैसा ही विद्यमान है आगे भी वैसा ही होगा । इसमें परस्पर विरोध कुछ नहीं है । जो वस्तु अन्य पदार्थों में अन्यों के रूपसे ही व्यापक हो वही उनमें निराकार माना जायगा और जो अपने स्वरूप से विशेष कर प्रकट हो वह साकार कहावेगा । जैसे अग्नि लकड़ी कण्डादि पदार्थों में उन २ के रूप से विद्यमान सूक्ष्म व्यापक निराकार है और जहां २ अपने स्वरूप से प्रकट होके प्रज्वलित हो रहा है वहां २ साकार है एक ही काल में साकार निराकार द्विविध अग्नि विद्यमान है विरोध कुछ नहीं, वा यों कहो कि संसार में में जो २ स्थूल

पदार्थ प्रत्यक्ष दीखते हैं वे सभी उसी कालमें अतिसूक्ष्म रूपसे भी जैसे विद्यमान हैं वैसे ही ईश्वर परमात्मा भी साकार निराकार दोनों प्रकार का एक ही काल में विद्यमान हैं विरोध कुछ नहीं है। यदि कहो कि साकार वस्तु अनित्य विनाशी मरणस्वभाव वाला होगा और निराकार नित्य अविनाशी मरण धर्म से रहित होगा यही साकार निराकार दोनों प्रकार का ईश्वर को मानने में महाविरोध है। तो इसका भी समाधान हो चुका है कि जैसे जीवात्मा शरीरधारी होनेसे साकार मरण धर्मक कहाता हुआ भी नित्य अविनाशी न मरने वाला भी अपने वास्तविक स्वरूप से माना जाता है और सोपाधिक दशा में उपाधि के धर्म अनित्यता विनाशिता और मरण का भी व्यवहार दशा में उपाधि के सम्बन्ध से आरोपमात्र किया जाता है वैसे ही ईश्वर में भी उपाधि के सम्बन्ध से कथन मात्रके लिये आने वाली अनित्यतादि अनिवार्य है पर वास्तव में अनित्यतादि दोष ईश्वर में कदापि नहीं लगता॥

पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतन्दिवि।

इस वेदमन्त्र में त्रिपाद् ब्रह्म को अमृत कहनेकी अर्थापत्ति से सब संसार रूप से परिणत एकपाद ब्रह्मको मृतपद से वेद स्वयमेव बोधित करता है परन्तु औपाधिक मरण आरोप कर

के कथन वा व्यवहार मात्र है वास्तविक नहीं इस से साकार होता हुआ भी ईश्वर अपने वास्तविक स्वरूप से सदा नित्य और अविनाशी ही रहता है। जैसे जीवका वास्तविक स्वरूप मानुषादि शरीर नहीं है वैसे ईश्वर के भी रामकृष्ण वामन नृसिंहादि अवतारोपाधियां वास्तविक स्वरूप नहीं हैं इसी कारण उपाधियों के नाम वा मरण से ईश्वर अनित्य नहीं ठहरता ॥

प्रश्न-(१४) यदि पाषाणादि मूर्त्ति पूजा सत्य है तो उसका विधान चार वर्ण और चार आश्रमों में से किस के लिये है ? ॥

उत्तर-(१४) मूर्त्ति के द्वारा भगवान् की पूजा वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण और सैकड़ों युक्तियों से अनेक लेखों और व्याख्यानों के द्वारा कर्त्तव्य सिद्ध हो चुकी है वह पूजा चारों वर्णोंके लिये और ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यास चारों आश्रमों के लिये धर्मशास्त्रकारोंने मानी है। संन्यास आश्रम चार प्रकार का है उस में पहिली कक्षा वाले संन्यासियों के लिये भी मूर्त्तिपूजा का विधान है किन्तु अन्तिम कोटि के परमहंस वा हंस के लिये निषेध है। क्योंकि वे लोग सर्वत्र समदर्शी हो जाते हैं उन का देहाध्यास नष्ट हो जाता है इससे उनको सिद्ध कोटि में पहुंच जाने के कारण मूर्त्तिपूजा

की आवश्यकता नहीं रहती है । मनु० अ० । १७६ । ब्रह्मचर्य प्रकरण में लिखा है कि—

नित्यंस्नात्वाशुचिःकुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम् ।
देवताभ्यर्चनंचैवसमिदाधानमेवच ॥

इस श्लोक पर देवताभ्यर्चन पद का अर्थ सभी टीकाकारों ने दैवत प्रतिमा का पूजन किया है सभी वर्णों के ब्रह्मचारी प्रतिदिन नियम से देव प्रतिमाओं का पूजन किया करें यह मनुजी की आज्ञा है जैसे देवों ऋषियों तथा पितरों का तर्पण और समिदाधान करने का नित्य नियम है वैसे ही पूजन को भी नित्य नियम से कर्त्तव्य कहा गया है । मनु० अ० ४ । ३६ । १३० । १५२ । १५३ ।

मृदंगांदैवतंविप्रं घृतंमधुचतुष्पथम् ।
प्रदक्षिणानिकुर्वीतप्रज्ञातांश्चवनस्पतीन् ॥ १ ॥
देवतानांगुरोराज्ञः स्नातकाचार्ययोस्तथा ।
नाक्रामेत्कामतश्छायांबभ्रुणोदीक्षितस्यच ॥
पूर्वाह्णएवकुर्वीत देवतानांचपूजनम् ।
दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्चद्विजोत्तमान् ।
ईश्वरंचैवरक्षार्थं गुरूनेवचपर्वसु ॥

खुदी मट्टी का ढेर, गौ, देवता की प्रतिमा, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराहा, मार्ग में चलते समय ये सब आजावें तो गृहस्थ ब्राह्मणादि सब वर्ण इनको परिक्रमा करके जावें। षोड़शोपचार पूजन में प्रदक्षिणा भी एकविध पूजन है यहां भी दैवत पद से सब टीकाकारों ने देवता की प्रतिमा ली है। देवता, गुरु, राजा, स्नातक और आचार्य वा यज्ञ दीक्षित पुरुष की छाया को लांघकर वा पग धरके न निकले यहां भी चार टीकाकारों ने देवता पद का अर्थ देवता की प्रतिमा लिखा है क्योंकि प्रतिमाकी छाया होसकती है ब्राह्मणादि गृहस्थ द्विजों को मध्यान्ह से पहिले पूर्वाह्न में देवता की प्रतिमाओं का पूजन करना चाहिये। मनुजी के कथनानुसार दक्षस्मृतिमें दिन के आठ भागों में सब कर्त्तव्य धर्म सम्बन्धी कर्मोंका विभाग दिखाते हुए पूर्वाह्न में देव पूजा का समय ब्राह्मणादि वर्णों के लिये नियत किया है तदनुसार आन्हिक सूत्रावली आदि पुस्तकों में प्रातः सन्ध्या अग्निहोत्र वेदाभ्यास के अनन्तर चार घड़ी दिन चढ़े पश्चात् देव मूर्त्तियों के पूजन का विधान दिखाया है। मनुजी कहते हैं कि गृहस्थ ब्राह्मणादि को चाहिये कि अमावस्यादि पर्व दिनों में बड़े २ प्रसिद्ध देव मन्दिरों की देवप्रतिमाओं के सम्मुख, धार्मिक ब्राह्मणोंके तथा राजा और

गुरु के पास अपनी रक्षा की प्रार्थना के लिये दर्शनार्थ आया करें। इत्यादि प्रमाणों से सब वर्णों और सब आश्रमोंके लिये मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें मूर्त्तिपूजा का विधान किया है॥

प्रश्न-(१५) क्या परमात्मा की कल्पित मूर्त्ति हो सकती है तो केवल उस की पूजा से संसार की उन्नति हो सकती है या नहीं? और आज तक पाषाणादि मूर्त्तिपूजा से इस देश को क्या २ लाभ हुए?॥

उत्तर-(१५) परमात्मा की कल्पित मूर्त्ति अवश्य हो सकती है तभी तो लाखों मूर्त्तियां विद्यमान हैं। परन्तु निराकार की कल्पित मूर्त्ति नहीं हो सकती किन्तु साकार ईश्वर की मूर्त्तियां शास्त्रोंकी आज्ञानुसार कल्पित की जाती हैं जैसे चेतन सहित शरीर का फोटो कल्पित किया जाता है किन्तु केवल शरीर रहित चेतन की मूर्त्ति नाम फोटो नहीं बन सकता। जब संसार में सभी प्रकार की तसवीरें कल्पना से बनती आती हैं तब ईश्वर की मूर्त्ति भी वैसे ही क्यों नहीं बन सकती? शरीर सहित जीवका फोटो लेने के तुल्य अवतारादि साकार ईश्वर के दिव्य शरीरों की मूर्त्तियां बन सकती हैं वैसे ही परम्परासे बनती चली आती हैं। उस ईश्वर की मूर्त्ति द्वारा पूजा से वा जप पाठ होमादि द्वारा की

हुई पूजा से भी संसार की सब प्रकार की उन्नति हो सकती है। चाहे यों कहो कि ब्राह्मणादि सब वर्ण अपने २ धर्म कर्मों का यथावत् पालन करने लगें तो पूरी २ उन्नति हो सकती है मूर्त्ति पूजा भी सब का कर्त्तव्य धर्म होने से उन्नति का हेतु अवश्य है • आर्यसमाजी आदि अनेक लोग देश सुधार का बीड़ा बढाते हुए भी धर्म को धक्का देकर मनमाने उपाय से संसार की उन्नति करना चाहते हैं सो धर्म के त्याग से उन्नति की आशा नहीं है जबसे ब्राह्मण क्षत्रियादि लोग अपने अपने कर्त्तव्य धर्म से डिगे तभी से अवनति होने लगी है। यह बात तो हम भी मानते हैं कि वर्त्तमान काल में मूर्त्ति• पूजा न होने से बहुत अच्छी होने पर भी शास्त्रानुकूल जैसी पूजा होनी चाहिये वैसी बहुत कम है किन्तु बनावटी दिखा• वटी स्वार्थ साधन के अवलम्ब से प्रायः मूर्त्ति पूजा का प्रवाह चल गया है वा यों कहो कि शुद्ध चित्त से पूर्ण श्रद्धा भक्ति के साथ ईश्वर देवता की सच्ची पूजा उपासना अत्यन्त कम हो गयी है इसी कारण उस से प्रत्यक्ष उन्नति प्रायः लोगों को नहीं दीखती इस का कारण काम क्रोध लोभादि अधर्म की उन्नति है काम क्रोधादि से छुट्टी मिलने पर ठीक २ पूजा उपासना होना सम्भव है। मूर्त्ति पूजा से इस देश को सब से

बड़ा लाभ तो यह हुआ कि बौद्ध जैन मुसलमानादि के बड़े २ धक्के सनातनधर्म को लगने पर भी यह धर्म आज तक भी जीवित है इतने २ बड़े प्रबल आघात किसी अन्य मत पर हुए होते तो उस का नाम निशान भी न रहता। इस मूर्त्ति पूजा के कारण देश के ब्राह्मणादि लाखों मनुष्यों में अबतक कुछ आस्तिकता बनी है कुछ श्रद्धा भक्ति भी बनी है। जिस के अनेक प्रबल शत्रु सर्वनाशार्थ कटिबद्ध हों उस का जीवित रह सकना अति कठिन है। तदनुसार सनातनधर्म के समूल घातक शत्रु कम नहीं हैं तो भी इस का नाश नहीं हुआ और आगे भी नाश होने का अनुमान नहीं है इस का एक कारण मूर्त्ति पूजा का अखण्ड और दृढ़ प्रचार भी अवश्य है जो इस धर्म को साधे हुए है॥

जब संसार की सभी मूर्त्तियां कल्पित ही हुआ करती हैं। अखण्ड काल की एक मूर्त्ति घड़ी बन गयी वह भी कल्पित है उस से बड़े २ काम निकलते हैं। अकारादि वर्णोंकी अक्षररूप मूर्त्तियां भी सब कल्पित ही हैं। जिनके शब्द वाक्य पद्य गद्य रूप लिखित मुद्रित पुस्तकों द्वारा सहस्रों लाखों मनुष्य सुशिक्षित विद्वान् होते हैं। जैसे इन कालादि की मूर्त्तियोंसे बहुविध उपकार हो रहा है वैसे ही ईश्वर देवतादि

की कल्पित मूर्त्तियों से श्रद्धा, भक्ति उपासना रूप धर्म की सत्ता संसारमें बनी है जिस से अन्तःकरण का संस्कार कुछ कुछ होता रहता है। यदि यह न होता तो श्रद्धा भक्ति सम्बन्ध सभी सुख और आस्तिकता अबतक निर्मूल नष्ट होगये होते॥

और यह भी सोचना चाहिये कि जब श्रद्धा भक्ति पूर्वक ईश्वरोपासना की एक सुगम रीति सर्वसाधारण के लिये मूर्त्तिपूजा ही है तब इससे सभी प्रकारका संसार का उपकार हो सकता है। उन्नति पदका मुख्य अर्थ अभ्युदय सुख की सीमा विद्या सुशिक्षा आरोग्य सभ्यता शारीरिक बल और आत्मिक बलकी योग्यता प्राप्त करने पूर्वक चिरस्थायी चक्रवर्त्ती राज्य प्राप्त करने तक है। इन सबकी जैसी उत्तम प्राप्ति भगवान् परमात्मा की इच्छा और कृपासे हो सकती है वैसी अन्य प्रकारसे कदापि नहीं हो सकती इसलिये आचार्यों ने तथा ऋषियोंने यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि धर्मकी रक्षा करने से धर्म तुम लोगों की रक्षा करता और करेगा। वास्तवमें हम लोग धर्मकी रक्षा नहीं करते किन्तु काम क्रोध लोभादि धर्मके शत्रुओं के साथी उनके कामादि शत्रुओं द्वारा धर्मका गला काट रहे हैं। संसारमें जो मनुष्य जितना ही अधिक धर्मकी रक्षा स्वार्थ छोड़के करेगा उतना

ही उस पर ईश्वर प्रसन्न होगा और वैसा ही अधिक २ उस के कर्मानुसार खण्डराज्यादि का अधिकारी उसको बनावेगा। अंग्रेजों का धर्म जैसा कुछ हो वह विचार पृथक् है परन्तु नियत समय लाट जज कमिश्नर कलक्टरादि सभा अधिकारी लोग भी गिर्जामें जाकर प्रार्थना करते और सुनते हैं परन्तु हमारे हिन्दुभाई तहसीलदार डिप्टी होजाने पर भी देवमन्दिरमें जाकर स्तुति प्रार्थना करनेको तयार नहीं ऐसे कामों से उनको लज्जा होती है और जज वा कलक्टर बना दिये जांय तबतो कहना ही क्या है। अंग्रेज लोग जितने सत्यवादी प्रतिज्ञा पालक रिसवत आदिसे बचकर जैसा निष्पक्ष न्याय करते हैं उसका शतांश भी अभीतक हिन्दुस्तानी लोगों में नहीं है जब धर्मानुकूल ऐसे गुणों की उन्नति हम लोगों में होगी और अगरेजों से भी अधिक स्वार्थत्यागी सत्यवादी प्रतिज्ञापालक हो घूंस लेनेसे बचकर अदल न्यायाधीश जब हम बनेंगे तब हम उनसे भी आगे राज्य सम्बन्धी ऐश्वर्य के अधिकारी होने ईश्वर राज्यैश्वर्य के अधिकारी हम लोगों को अवश्य बनावेगा। अभिप्राय यह है कि मूर्त्ति पूजा उन्नति का बाधक कदापि नहीं किन्तु श्रद्धाभक्ति पूर्वक ईश्वरोपासनाका एक सुगम उपाय होने से अन्य अच्छे २ धर्मानुकूल गुण भी हों तो सब प्रकार की उन्नतिका साधक अवश्य है।

प्रश्न (१६) वर्त्तमान में जो २ मूर्त्तियां प्रचलित हो रहीं हैं उन २ का ईश्वर के साथ क्या २ सम्बन्ध (नाता) है।

उत्तर-इस प्रश्न में समाजी की अत्यन्त बेसमझी प्रसिद्ध दीखती है क्योंकि स्वा० दयानन्दजी का वा अन्य जिस २ का फोटो समाजी लोग उतरवाते हैं और अपने २ कमरोंमें लगाते हैं उस २ फोटो वाले का उस २ फोटो से क्या २ नाता है यह बात स्वयं ही सोच लेना था। अनेक श्रद्धालु समाजी स्वा० दयानन्द के फोटो को शिर भी नमाते देखे गये हैं। अंगरेज लोग महारानी विक्टोरिया की मूर्त्ति को देखते हो टोपी उतार लेते हैं यदि कुछ सम्बन्ध नहीं है तो तुम यह क्यों कहते मानते हो कि यह स्वामी दयानन्द का फोटो है। हमारा निश्चय है कि यही (मूर्त्ति तथा मूर्त्ति मान् का क्या सम्बन्ध है) प्रश्न किसी बुद्धिमान् साक्षर उपदेशकादि समाजी से किया जाय तो वह यही उत्तर देगा कि मूर्त्तिमान् के साथ मूर्त्तिका बोध्य बोधक व ज्ञाप्य ज्ञापक सम्बन्ध है क्योंकि यही बात प्रत्यक्षादि प्रमाणसे लोक में सिद्ध है सभी जानते मानते हैं कि मूर्त्ति वा फोटो देखते ही मूर्त्तिमान् का बोध हो जाता है कि अमुक पुरुष ऐसा था सो इतना ही नहीं कि केवल आकृतिका ही बोध होता हो किन्तु ज्ञानी

योगी, शान्त, धर्मप्रेमी, श्रद्धालु आस्तिक, नास्तिक, कामी, क्रोधी, लोभी, निर्बल, बलवान्, उत्साही, निरुत्साही, मूर्ख विद्वान्, चेतन, जड़, इत्यादि जो २ ज्ञानादि गुण मूर्त्तिमान् में विद्यमान होता है उस २ गुण वा भाव की झलक वा चमक भी फोटो वा मूर्त्ति में आयी हुई प्रत्यक्ष दीखती है। इसी लिये एक मनुष्य के अनेक भाव दीखेंगे और एक ही मनुष्य की रोगी तथा निरोगी के अथवा उसी के जीवित और मृत शरीर के फोटो उतारे जावें तो रोग वा नीरोगता तथा जीवित दशा और मुर्दापन पृथक् २ स्पष्ट दीख पड़ेंगे इस से मूर्त्तिमान्का एक दूसरा स्वरूप ही मूर्त्ति ठहरेगा इसके अनुसार दोनों का अतिनिकट अन्तरङ्ग स्वस्वामि संबन्ध भी सिद्ध हो जाता है अर्थात् मूर्त्तिमान् के साथ मूर्त्ति का बड़ा घनिष्ठ संबन्ध सिद्ध होता है॥

अब रहा ईश्वर की मूर्त्ति के साथ उसका सम्बन्ध सो उक्त प्रकार सभी सम्बन्ध परमात्मा के साथ भी वैसे ही विद्यमान हैं कि जैसे सम्बन्ध मनुष्यादि की मूर्त्तियोंके उन २ के साथ विद्यमान हैं। यह बात हम पहिले ही लिख चुके हैं कि परमेश्वर ने जो २ साकार रूप अवतार धारण किये हैं उन ही अवतारों की मूर्त्तियां बना करती हैं। जैसे

शरीर से पृथक् केवल चेतन मात्र जीव का फोटो आज तक किसी ने नहीं बना पाया वैसेही निर्गुण निराकार परमेश्वर का फोटो वा मूर्त्ति नहीं बन सकती इसी से निर्गुण ईश्वर की मूर्त्ति कोई भी नहीं बनाता मूर्त्ति के साथ ईश्वर का व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भी विद्यमान है यह समाजी लोगोंको भी इस लिये मानने पड़ेगा कि वे लोग भी ईश्वर को सब में व्यापक मानते हैं इस प्रकार बोध्य बोधक व्याप्य व्यापक और स्वस्वामि सम्बन्ध सर्व सम्मत सिद्ध हो गये, जब मूर्त्ति वा फोटा को देखकर समाजी लोग भी जान लेते हैं कि यह मूर्त्ति अमुक की है तो जाना ब्याप्य ब्यापक सम्बन्ध समाजियों ने मान लिया. यह फोटो अमुक पुरुष का है ऐसा कहते मानते हुए समाजियों ने मान लिया कि मूर्त्ति मूर्त्तिमान् का स्वस्वामि सम्बन्ध है और ईश्वर को उस की मूर्त्ति में व्यापक मानते हुए व्याप्य व्यापक सम्बन्ध मान लिया तब ऐसी दशा में प्रश्नकर्त्ता समाजी ने अज्ञान ग्रस्त होके बेहोशी में प्रश्न लिखा होगा यही कहना बन सकता है । यह भी ध्यान रहे कि जैसे मनुष्यादि के फोटो पर काम. क्रोध. शान्ति, निर्बलता. बलिष्ठता, धर्म अधर्म आदि के भाव प्रत्यक्ष दीखते हैं वैसे ही ईश्वर देवता की मूर्तियां भी यदि

उसी भावनासे बनाई गई हों तो उन परभी सहृदय आस्तिक श्रद्धालु लोगों को ईश्वरपन व देवतापन भी स्पष्ट साक्षात् अनुभूत होता है। जैसे योगी ज्ञानी निष्काम लोगोंकी मूर्त्तियों पर योग वा ज्ञान तथा निष्कामत्व स्पष्ट झलकता है वा जैसे कामिनी युवती स्त्रियों के उसी भाव से बनाये फोटो को देखते ही कामी लोगोंको तत्काल कामोद्बोधन होता है जिस से सिद्ध हो जाता है कि मूर्त्तिमानमें जो भाव था वही मूर्त्ति में भी आ गया है क्योंकि ऐसा न होता तो कामोद्बोधन न हो सकता। तब इसी के अनुसार ईश्वर देवताकी मूर्त्तियों में ईश्वर देवतापन भी अवश्यमेव आ जाता है, जब उपासक पुरुषों की भक्ति वा उपासना अत्यन्त प्रबल हो जाती है तब उस को ईश्वर देवता की मूर्त्ति ही साक्षात् ईश्वर देवतारूप होकर दीखने लगती है। जैसे धर्ममूर्त्ति वा क्रोधमूर्त्ति कहने से लोक में यह अभिप्राय समझा जाता है कि जानो धर्म ही उस धर्ममूर्त्ति मनुष्य के आकार में संगृहीत होगया है तथा क्रोधमूर्त्ति मनुष्य में क्रोध ने ही वैसा रूप धारण कर लिया है अर्थात् उस मनुष्य के रोम २ में वा नस २ में धर्म वा क्रोध भरा हुआ है जैसे लोहे का पिण्ड अग्निमय वा अग्नि की मूर्त्ति कहाता है क्योंकि लोहे का एक परमाणु भी

अग्नि से परित्यक्त नहीं है, धर्म मूर्ति मनुष्य के शरीर में वा क्रोध मूर्त्ति मनुष्य के शरीर में एक परमाणु भी ऐसा नहीं बचा जो धर्म वा क्रोधसे आक्रान्त न हुआ हो इसी कारण वह मनुष्य धर्ममूर्त्ति व क्रोधमूर्त्ति कहाता है इसीके अनुसार अच्छे उपासक भक्तों को ईश्वर की मूर्त्ति का एक भी परमाणु ईश्वर देवतापनसे खाली नहीं दीखता किन्तु वह मूर्त्ति ही ईश्वर देवता का साक्षात् स्वरूप दीखती है इस विचार के अनुसार ईश्वर के साथ उस की मूर्त्ति का तादात्म्य सम्बन्ध कहना वा मानना भी उपरोक्त युक्ति से सिद्ध है ॥

प्रश्न-(१७) पूजा, पूजाऽरि, शिवलिङ्ग, शालिग्राम, जगन्नाथ, काशीनाथ, टीकेश्वर, नीलकण्ठ, वेङ्कटेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर, लोधेश्वर, वैद्यनाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ और वटेश्वर इत्यादि शब्दों का क्या अर्थ है ? ॥

उत्तर-(१७) इन शब्दों का अर्थ पूछने से समाजी के दो प्रयोजन हो सकते हैं एक तो समाजियों में मूर्ख मण्डली के एकत्र होने से उक्त शब्दों का अर्थ कोई नहीं जानता, इस से पूछा हो । यदि ऐसा हो तो समाजी को शिष्य बनकर किसी विद्वान् से पढ़ लेना चाहिये पर हमारी समझ में प्रश्न कर्त्ता का यह प्रयोजन नहीं है किन्तु द्वितीय प्रयोजन यह हो

समझता हूं कि समाजी लोग सनातनधर्म के मन्तव्यसे विरुद्ध उक्त शब्दों का मनमाना अर्थ करके उपहास करते हैं सो यह उन की बड़ी भूल है क्योंकि अपनी बेसमझी के दोष को निर्दोष सनातन धर्म पर लगाते हैं, उचित तो यह था कि अपनी बे समझी पर पश्चात्ताप करते, अस्तु। उक्त शब्दों का अर्थ हम दिखाते हैं। शब्दों के अर्थ व्याकरण और कोश दो के प्रमाणोंसे किये जाते हैं (चिन्तपूजि० ३। ३। १०५) व्याकरण के सूत्र से अङ् प्रत्ययान्त पूजा शब्द बनता है। ईश्वर देवता तथा गुरु आदिकी शास्त्रोक्त विधि से सेवा करना पूजा कहाती है।

ईश्वर देवता की पञ्चोपचारोंसे, दशोपचारोंसे, षोड़शोपचारोंसे, अष्टादशोपचारोंसे, अष्टत्रिंशदुपचारों से और चतुः षष्टि उपचारोंसे की आराधना पूजा कहाती है। जैसे कोई पूछे कि विवाह किसे कहते हैं तो यही उत्तर उचित होगा कि ग्रन्थों में लिखे विधान विशेषके साथ किये स्त्री पुरुष सम्बन्धका नाम विवाह है वैसे यहां भी विशेष विधान से की ईश्वर देवतादि की आराधना पूजा कहाती है। उपचार शब्द का अर्थ यहां साधन है पांच प्रकार के साधनों से की पूजा पञ्चोपचार कहाती है इसी प्रकार दशोपचारादि जानो। सामान्यतया

पूजा शब्द का अर्थ आदर सत्कार मान्य प्रतिष्ठा करना अर्थात् अपने पूज्य वा उपास्य ईश्वर देवादि की इज्जत करना पूजा का सामान्य अर्थ है। यह अर्थ सब प्रकार की पूजा में ठीक २ घट जाता है। मूर्त्ति आदि में सर्वत्र मूर्त्तिमान् वा अभिमानी देव पूज्य माना जाता है। (पूजयेदशनंनित्यं०) यहां मनुजी ने भोजन की भी पूजा कही है सो (पितुंनुस्तोषं) इत्यादि से वा (स्वादोपितोमधोपितो०) इत्यादि अन्नसूक्त से अन्नाधिष्ठातृ देवता का स्तुति रूप मान्य वा सत्कार करना यहां भी पूजा शब्द का अर्थ है जड़ मूर्त्ति आदि कहींभी पूज्य नहीं किन्तु मूर्त्तिमान् वा अभिमानी चेतन देव उस २ मूर्त्ति आदि के द्वारा सर्वत्र पूजा का पात्र है॥

द्वितीय पूजाऽरि शब्द संस्कृत ग्रन्थों में कहीं नहीं आता इसी से कोश ग्रन्थों में नहीं लिखा गया समाजी लोग इसका अर्थ पूजा का अरि नाम शत्रु ऐसा करते हैं सो यह एक प्रकार की धूर्त्तता है इसी के अनुसार वा ऐसी बातों के उत्तर में सनातनी लोग-नमस्तेका अर्थ करते हैं न-मस्ते नाम मस्तकमें चन्दन तिलकादि कुछ नहीं वा मस्तक में विचार शक्ति कुछ नहीं इसी लिये समाजी लोग वेदादि में कहे धर्म से विरुद्ध चलके अपनी उन्नति की आशा रखते हैं। दया नाम हिंसा

मैं अर्थात् खण्डन करने द्वारा अन्यों को दुःख पहुंचाने में है आनन्द जिसको वह दयानन्द शब्द का अर्थ करते हैं (दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस धातुपाठके प्रमाणानुसार दय धातु का हिंसा भी अर्थ है। इस से दयानन्द शब्द का उक्त अर्थ प्रमाणानुसार है समिधा शब्दका अर्थ है जिस से अग्नि सम्यक् प्रज्वलित हो वह मट्टी का तेल समिधा शब्द का अर्थ है। अब सुनिये यदि पुजारी शब्द संस्कृत माना जाय तो इस को दीर्घ मानना चाहिये।

पूजाया अरो ज्ञानं पूजारः ऋगताविति धातोः ऋदोरबिति अप् गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति प्रशस्तोऽतिशयितो वा पूजारोऽस्यास्तीति पूजारी सत्यदेवपूजाविधितत्त्वयोर्विज्ञाता पूजारी देवपूजातत्त्वज्ञः अतइनिठनाविती इनिः प्रत्ययः। यद्वा पूजाया रो दानं पूजारः घञर्थेकविधानमिति रादाने धातोः कः प्रत्ययः सोऽस्यास्तीति मत्वर्थइनिः। पूजाफलं स्वामिने ददाति पूजाप्रसादं तुलसीपत्रादिकं वा दर्शकेभ्यो ददातीति पूजारी॥

भा०—पूजा करने का उत्तम वा बहुत ज्ञान जिस को हो वह पूजा विधि का तत्ववेत्ता पूजारी कहाता अथवा पूजाका फल मन्दिर के स्वामी को वा पूजा का प्रसाद तुलसीपत्रादि दर्शकोंको देने वाला अथवा पूजा करनेकी शिक्षा अन्य जिज्ञासुओंको देने वाला पूजारी कहाता है इस प्रकार पूजारी शब्द का अर्थ सर्वथा निर्दोष है ॥

तृतीय शिवलिङ्ग शब्द का अर्थ हम शिवलिङ्ग पूजा माहात्म्य नामक पुस्तक में छपा चुके हैं जिस का सारांश यह है कि शिव नाम रूप कल्याणकारी परमात्माका लिङ्ग नाम चिन्ह शिवलिङ्ग कहाता है। वह लिङ्ग अनेक प्रकार का है। यह बात भी वहाँ स्पष्ट कर दी गयी है कि यद्यपि मेष वृष आदि राशियां आकाश मण्डल में वैसी ही ठीक बनावट की हैं कि जैसी पार्थिव मेष मेढ़ा और वृष नाम बैल की बनावट है और दैवी मेषादि ही पार्थिव मेषादि के कारण हैं इसी लिये दैव पार्थिव दोनों प्रकार के मेषादि के एक ही नाम हैं तथापि पार्थिव मेषादि घास आदि खाता और मांस हड्डी चर्मादि वाला है वैसा दैव मेष नहीं है वह घासादि कुछ भी स्थूल वस्तु नहीं खाता न उस में मांस हड्डी चर्मादि हैं यह बड़ा भेद है वैसेही दैव और मानुष लिङ्ग

तथा योनि आदि एकसी बनावट के होने पर भी बड़ा भेद है दिव्य लिङ्गादि ज्योतिः स्वरूप मांसास्थि रहित शुद्ध सात्विक हैं, मानुष मूत्रादि दुर्गन्ध निकलने वाले हैं, दिव्य, चिन्हमात्र लिङ्गादि में घृणित अंश लेशमात्र भी नहीं है। इसलिये मानुष लिङ्गादिकी ओर ध्यान रखते हुए दिव्य पदार्थोंको उसी भाव से देखना वा मानना समाजियों की मूर्खता है ॥

चौथा—शालग्राम शब्द है उसको स्वामीजी ने अज्ञानग्रस्त होनेसे अशुद्ध शालिग्राम लिखा है। यदि शब्दके शुद्ध अशुद्ध भेदोंका बोध होता तो विचारके लिखा जाता। अब देखिये शालग्राम शब्दका अर्थ—कत्थन नाम प्रशंसा अर्थमें शाल धातु कोषकर्ताओंने माना और लिखा है। यद्यपि वृक्षादि अर्थों का भी वाचक शाल शब्द है पर वह यहां नहीं लेना है। और ग्राम शब्द के भी अनेकार्थ हैं उन में से समूहार्थ बोधक ग्राम शब्द यहां लेना है जैसे भूतग्राम, गुणग्राम, इन्द्रियग्राम इत्यादि शब्दोंमें ग्राम शब्द समूहार्थ वाचक लिया जाता है (बलवा-निन्द्रियग्रामो विद्वांसमपकर्षति) मनु० अ० २ इत्यादि उदाहरण जानो। वैसे ही शालग्राम शब्द में भी ग्राम शब्द का समूहार्थ लेना इष्ट है तब यह अर्थ होगा कि—

शालानां प्रशंसानां ग्रामः समूहो यस्मिन्स

शालग्रामो भगवन्मूर्त्ति विशेषो गण्डक्यां नद्या-मुत्पन्नो मोक्षार्थिभिः पूज्य उपास्यश्च ॥

भा०-शाल नाम प्रशंसाओं का समूह जिसमें हो, यद्यपि नर्मदेश्वरादि अनेक मूर्त्तियां पूजने में भिन्न २ रूप से प्रशस्त हैं तथापि अन्य सब मूर्त्तियों की अपेक्षा शालग्राम नामक मूर्त्ति का पूजन अधिक फल देने वाला है अधिक प्रशंसा शालग्राम मूर्त्ति की है और ऐसा ही लोक में सब उपासक जानते मानते भी हैं इससे शालग्राम शब्द का यही अर्थ शास्त्रानुकूल है। आशा है कि समाजी प्रश्न कर्त्ता अपनी बेसमझी से लज्जित होकर आगे शालिग्राम अशुद्ध शब्द को कहना लिखना छोड़ देंगे। यद्यपि ग्रामों के ढेर का नाम रक्खें तो शालिग्राम शब्द शुद्ध है तथापि शालिग्राम नामक भगवान् की मूर्त्ति में उसका प्रयोग करना सर्वथा अशुद्ध है। पद्मपुराणादि ग्रन्थों में शालग्राम का जो माहात्म्य और उत्पत्तिक विशेष लेख विद्यमान है उसका अभिप्राय भी लेख बढ़जाने के भय से यहां नहीं लिखा, सब विद्वान् लोग शालग्राम शब्द को ही लिखते बोलते हैं मूर्ख लोग उसके स्थान में शालिग्राम कहें लिखें भी तो वे प्रामाणिक नहीं है ॥

जगन्नाथ काशीनाथ आदि शब्दों के अर्थ सीधे लोक सिद्ध

हैं। जगत् नाम जङ्गम प्राणीमात्र के नाथ नाम ईश्वर विष्णु भगवान् का नाम जगन्नाथ है तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र है अर्थात् पुरी के बीच अवस्थित भगवान् की मूर्त्ति का भी नाम जगन्नाथ है क्योंकि (जगन्नाथस्य प्रतिकृतिर्जगन्नाथः) यहां प्रतिकृति अर्थ में कन् प्रत्ययका लुक् होजाता है इस से जगन्नाथ नामक नारायण की विशेष प्रतिमा भी जगन्नाथ कहाती है। पुरुषोत्तम क्षेत्र और जगन्नाथपुरी शब्द एकार्थ हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के प्रकृति खण्ड में पुरुषोत्तम क्षेत्रका माहात्म्य विशेष रूपसे वर्णन किया है। काशीनाथ नाम शिवजी का है काशी नामक क्षेत्र के नाथ नाम ईश्वर काशीनाथ कहाते हैं। इस शब्दमें कोई ऐसी विशेषता नहीं जिस पर अधिक लिखें॥

नीलकण्ठ तथा नीलग्रीव शब्दों का एक ही अर्थ है, नीलग्रीव शब्द शुक्ल यजुर्वेदसंहिता अ० १६ में आया ही है यह भी शिवजी का नाम है नीलवर्ण विष है कण्ठ में जिनके था नीलवर्ण है कण्ठ जिनका उन शिवका नाम नीलकण्ठ समुद्रमन्थन के समय विषभक्षण के कारण हुआ।

त्रैलोक्यं मोहितं यस्य गन्धमाघ्रायतद्विषम्।
भयाल्लोकरक्षार्थं ब्रह्मणोवचनाच्छिवः॥ १॥

दधारभगवान्कण्ठे मन्त्रमूर्त्तिर्महेश्वरः ।

तदाप्रभृतिदेवस्तुनीलकण्ठइतिश्रुतिः ॥ २ ॥

भा०–महाभारत आदि पर्व में लिखा है कि जब समुद्र मन्थन होने पर उसमें से कालकूट विष निकला जिसके गन्ध को सूंघकर त्रैलोक्य मूर्छित हो गया तब ब्रह्मा जी के कहने से लोकों की रक्षा के लिये शिव जी ने उस विष को भक्षण करके कण्ठ में धारण कर लिया इस कारण उसी समय से शिव जी का नाम नीलकण्ठ हो गया। समाजी लोग नील-ग्रीव वा नीलकण्ठ शब्दों का (नील मणियों की माला पहनने वाला कोई राजपुरुष नीलकण्ठ कहाता है) जो यह अर्थ करते हैं सो मनमाना कल्पित होने से अग्राह्य है ॥

बदरीनाथ शब्द का अर्थ यह है कि बदरी नामक वृक्ष से चिन्हित आश्रम वा क्षेत्र के नाथ नाम ईश्वर बदरीनाथ कहाते हैं। नारायण विष्णु भगवान् का आश्रम बड़े भारी बदरी वृक्षके समीप पर्वत पर था और वहीं व्यासजी ने भी तप किया था उसी आश्रमके स्वामी भगवान् का नाम बदरीनाथ हुआ है। महाभारत वन पर्व के धौम्यतीर्थ यात्रा पर्वस्थ ६० अध्यायमें बदरिकाश्रम की प्रशंसा सम्यक् लिखी है इसलिये

बद्रीनाथ शब्द पर कुछ विवाद नहीं किन्तु सर्व सम्मत एक ही अर्थ है। केदार नाम तीर्थ विशेष का और केदार नामक पर्वत में जो शिव जी का लिङ्ग नाम एक बोध की मूर्त्ति विशेष है उसका नाथ ईश्वर वा स्वामी केदारनाथ कहाता है महाभारत वनपर्व अ० ८३ में इस की कथा है और काशीखण्ड में विशेष माहात्म्य लिखा है इस से इन शब्दोंके अर्थों में कुछ सन्देह नहीं है ॥

अब रहे टीकेश्वरादि शब्द सो जब समाजी लोग इन पर कोई आपत्ति प्रमाण युक्ति सहित दिखावेंगे तब उचित उत्तर दिया जायगा। बस टीका किसी स्थान विशेष वा किसी मनुष्यादि का नाम माना जायगा वहां वा उसने पूजा भक्तिके लिये स्थापित किया शिवलिंग टीकेश्वरादि नाम वाला कहावेगा इससे इस प्रश्न के अन्य शब्दों पर अभी और कुछ नहीं लिखते। वेश्यानाथादि शब्द किस २ ग्रन्थ के किस २ स्थल में लिखे हैं यह समाजी प्रश्नकर्त्ता से पूछना चाहिये और तुम क्या आपत्ति उस २ पर देते हो यह भी प्रष्टव्य है ॥

प्रश्न (१८) वर्त्तमान में जिन २ मूर्त्तियों की पूजा होती है उन २ में कुछ शक्ति भी है या कोरी ढपोल ही शंख हैं ? ॥

उत्तर—जिन २ मूर्त्तियों की पूजा होती है उन में कुछ

शक्ति होने की आवश्यकता समाजी को दिखानी चाहिये कि उन में इस २ युक्ति प्रमाण के अनुसार अमुक २ प्रकार की शक्ति होनी चाहिये। उन २ मूर्त्तियों में कुछ शक्ति क्यों अपेक्षित है? यदि शक्ति न होने पर पूजा नहीं हो सकती तो सहस्रों वर्ष से अशक्त मूर्त्तियों की पूजा कैसे हो सकी? इस अंश पर एक समाजी और सनातनधर्मी से हुई बात चीत दिखाते हैं—

समाजी—देखो महाशय! तुम लोग जड़ मूर्त्तियोंका पूजन करते और मानते हो परन्तु हम लोग (मातृदेवो भव। पितृदेवो भव) इत्यादि प्रमाण के अनुसार चेतन मूर्त्तियों का पूजन करते मानते हैं इस से हमारा मूर्त्ति पूजन ठीक सफल है और तुम्हारा मूर्त्ति के जड़ होने से निष्फल है॥

सनातनधर्मी—हम जड़ मूर्त्तियों का पूजन नहीं करते न मानते हैं किन्तु मूर्त्ति के द्वारा चेतन ईश्वर देवता का पूजन करते मानते हैं। तुम लोग भी पांचभौतिक जड़ शरीरके द्वारा चेतन जीव का ही पूजन मानते हो इस में इतना ही भेद है कि तुम्हारी शरीर मूर्त्तियां मांस रक्त हड्डी चर्म मल मूत्रादि से युक्त हैं और हमारी पाषाणादि की मूर्त्तियां मूत्रादि के दुर्गन्ध से रहित विशुद्ध हैं। जैसे तुम लोग शरीर मूर्त्तियोंके

पूजन से शरीर में व्यापक जीवकी प्रसन्नता फल मानते हो वैसे हम भी शरीरों में व्याप्त तथा मूर्त्तियों में व्याप्त ईश्वरकी प्रसन्नता को फल मानते हैं। और सुनो जब माता पितादि किसी प्रकार की शक्ति रखते हैं कुछ पैदा कर सकते हैं तब यदि पुत्र वा शिष्यादि भोजनादि देने द्वारा उनको सेवा करें तो उनको निकम्मे बनाना दोष होगा इससे समर्थ माता पितादि रूप मूर्त्तियों की सेवा निष्प्रयोजन निष्फल है। जैसे तुम कहते हो कि मृत माता पिता की रक्षा जन्मान्तर में उन के कर्मानुसार ईश्वर करेगा वा करता है हमारे किये श्राद्ध तर्पण के विना क्या वे भूखे प्यासे बैठे रहते हैं? वैसे हम भी कहते हैं कि जीवित माता पिता को भी उन के कर्मानुसार ईश्वर भोजन वस्त्र देता है वे लोग तुम्हारे भोजनादि के विना भूखे प्यासे नहीं बैठे हैं। इस से माता पिता की पूजा तुम्हारे मत में व्यर्थ निष्फल है पर हमारी मूर्त्तिपूजा ईश्वर प्रसादनार्थ होनेसे सार्थक सफल है॥

यदि तुम कहो कि जब माता पितादि लोग अतिवृद्ध अशक्त हो जावें तब कुछ पैदा नहीं कर सकते इससे शक्तिहीन माता पितादि की सेवा पूजा करना सार्थक और सफल है तब तुम पर वही तुम्हारा किया प्रश्न लौट कर आ गया कि

"वर्त्तमान में जिन २ माता पितादि शरीर मूर्त्तियों की पूजा समाजी मतमें अभिमत है उनमें कुछ शक्ति भी है ? या खाली ढपोल ही शंख है ?" अर्थात् जिन मूर्त्तियों में कुछ शक्ति है उनकी पूजा उक्त रीति से व्यर्थ है तथा जिनमें कुछ शक्ति नहीं उनकी ढपोलशंख होने से समाजी मत में पूजा नहीं हो सकती इससे समाजीमत की चेतन मूर्त्ति पूजा दोनों दशा में कट गयी और हमारे मत में जब मूर्त्तियों की पूजा मानी ही नहीं जाती किन्तु मूर्त्ति के द्वारा मूर्त्तिमान् की पूजा मानी जाती है तब मूर्त्ति में कुछ शक्ति पूछना तुम्हारी बेसमझी है क्योंकि हम जिसकी पूजा करते हैं वह तो सर्वशक्तिमान् है। और देखो ! यदि तुम हमारी पाषाण मूर्त्ति में बल पूर्वक टक्कर मारो तो देखोगे कि तुम्हारे हाथ पांव वा दांत टूट जावेंगे और मूर्त्ति का कुछ नहीं बिगड़ेगा तब जान लोगे कि तुमको भग्न कर देने की शक्ति मूर्त्ति में विद्यमान है। और क्या तुम को अभी तक भी इतना बोध वा होश नहीं हुआ कि सनातनधर्मी लोग असंख्य मूर्त्तियों को मानते और यथावसर शास्त्र की आज्ञानुसार उन सब की पूजा भी किया ही करते हैं उनमें सैंकड़ों मूर्त्तियां प्रत्यक्ष में ही अद्भुत अपरिमित शक्तिवाली हैं। हम लोग अनेक अवसरों में सूर्य-

भिमानी देव की पूजा करते हैं उस भूमि पूजा में भूमण्डल भर सभी मूर्त्ति है, इस पृथिवी रूप में जो २ शक्तियां हैं उन का बड़ा लम्बा चौड़ा व्याख्यान हो सकता है। पृथिवी का नाम वसुमती और वसुन्धरा है, हीरा, मणि आदि रत्न सुव-र्णादि धातु बहुमूल्य सब ऐश्वर्य देने की शक्ति, वृक्ष वनस्पति अन्न अनेक ओषधि उत्पन्न करने की शक्ति, सर्वंसहा होने से सब को सहने की शक्ति पृथिवी में है इत्यादि अनेक शक्ति-यां हैं। जल भी एक मूर्त्ति है इसकी भी पूजा वारुणी इष्टि में होती है यह वारुणी इष्टि वेदोक्त कर्म है अन्य प्रकारों से भी जल मूर्त्ति के द्वारा तदभिमानी देव की पूजा का विधान है जल मूर्त्ति में सब संसार को डुबा देने की शक्ति प्रत्यक्ष होने से समाजियों को भी माननी ही पड़ेगी। अग्नि मूर्त्ति की पूजा भी वेदसम्मत प्रसिद्ध है अग्नि में संसार को भस्म कर देने की शक्ति प्रत्यक्ष है। सूर्य मण्डल भी एक साक्षात् मूर्त्ति है इस के द्वारा भी तदभिमानी देव का पूजन वेद प्रति-पादित है आदित्य मूर्त्ति में भी त्रैलोक्य को प्रकाशित करने की, सब को दिखाने, कमलादि को खिला देनेकी और उल्लू आदि को अन्धा कर देने की शक्ति प्रसिद्ध है। इत्यादि अ-नेक मूर्त्तियों में अनेक अव्याहत शक्तियों के विद्यमान होने

पर भी प्रश्नकर्त्ता समाजी को न सूझा कि मूर्त्तियों में कुछ शक्ति है या नहीं? सो इसमें अन्य किसी का कुछ दोष नहीं है क्योंकि (नोलूकाप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्) यदि दिन में उल्लू को नहीं दीखता तो सूर्य का दोष नहीं है अर्थात् समाजी की अज्ञता में ही मूर्त्तियों की बहुविध शक्तियों को न समझने का दोष है। हम लोग मनुष्य पशु पक्षी आदि की शरीर रूप चेतन मूर्त्तियों के द्वारा भी अनेक देवों का पूजन मानते हैं इन मनुष्यादि मूर्त्तियों में भी अनेक शक्तियां हैं और पाषाणादि की बनी मूर्त्तियों में भी अनेक शक्ति हैं परन्तु मूर्त्ति पूजा के समय उपासक का ध्यान मूर्त्ति-मात्र पर होने से मूर्त्ति में शक्ति होने न होने की अपेक्षा कुछ नहीं है॥

प्रश्न-(१९) पाषाणादि मूर्त्तियोंमें जो वेदमन्त्रोंसे पण्डित लोग प्राणप्रतिष्ठा कराते हैं तो क्या सचमुच उनमें प्राण आ-जाते हैं? यदि आ जाते हैं तो उन मूर्त्तियोंकी डाक्टर वैद्यों से नाड़ी परीक्षा अवश्य करानी चाहिये यदि प्राण नहीं आते तो वह क्रिया सत् है या असत् या सरासर आंखों में धूल झोंकना या खेल खेलना है। और क्या उन्हीं मन्त्रों से मृत शरीर में प्राण आसकते हैं॥

उत्तर-(१६) मूर्त्ति में प्राण ला जाने का उत्तर देना तो हमारा काम है परन्तु हम पहिले प्रश्नकर्त्ता समाजीसे पूछते हैं कि क्या तुम लोग वेद मन्त्रों से जि० २ कामों को करते हो वे काम वैसे ही हो जाते हैं वा नहीं ? आर्याभिविनय पुस्तकमें स्वा० दयानन्द ने निराकार ईश्वर से सोमरस पीनेकी प्रार्थना (आपयायहि०) मन्त्रके अर्थमें की है कि हे ईश्वर ! हमने सोमरस निकाल के तय्यार किया है जो आकर पान कीजिये इस में प्रष्टव्य यह है कि निराकार ईश्वर ने कभी सोमरस पिया है ? क्या तुम इसका सत्य होना सिद्ध कर सकते हो ? हमारे सामने निराकार को सोमरस पिलाकर दिखाओ यदि तुम्हारा ईश्वर सोमरस नहीं पी सकता तो यह प्रार्थना लगा-कर आंखों में धूल झोंकना है वा खेल तमाशा है ? धनादि पदार्थ मांगने की प्रार्थना सैकड़ों मन्त्रों में स्वा० दया० ने की है सो क्या ईश्वर ने कभी धनादि पदार्थ तुमको दिये वा देता है ? यदि देता है तो तुम गुरुकुलादि के लिये अन्यों से चन्दा क्यों मांगते फिरते हो ! स्वा० द० ने संस्कारविधि के जातकर्म संस्कार में हाल के पैदा हुए बालक से मन्त्र पढ़के कहा है कि—

अश्माभव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतंभव ।

हे बालक ! तू पत्थर होजा फरसा हो जा और न छीजने वाला सुवर्ण तू बनजा-इस में प्रष्टव्य यह है कि क्या आ० समाजियों के बालक पैदा होते ही ऐसा मन्त्र पढ़ने पर पत्थर हो जाते हैं वा फरसा बन जाते हैं वा अक्षय सुवर्ण के शरीर बन जाते हैं ? यदि नहीं बन जाते तो क्या सरासर आंखों में धूलि झोंकना वा खेल तमाशा यह नहीं है ? तथा जातकर्म संस्कार में—

वेद ते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् ।

इस मन्त्र को पढ़ के स्वा० द० ने प्रसव भूमि से कहा है कि-हे भूमि स्वर्गस्थ चन्द्रलोक में ठहरा हुआ तुम्हारा हृदय इस पैदा हुए बालकको जानता है सो क्या सचमुच भूमि का हृदय चन्द्रलोक में है और वह बालक को जानता है ? और पृथिवी का हृदय चन्द्रलोकमें क्यों गया शरीरसे पृथक् किसी का हृदय कैसे रहता है और पृथिवी में हृदय है तो वह जड़ नहीं हो सकती इन सब बातों का उत्तर समाजी लोगों से पाठक लोग पूछें। ऐसे सैकड़ों प्रश्न समाजी मत में हो सकते हैं ॥

अब प्राण प्रतिष्ठा का उत्तर सुनिये-जिन लोगों को भगवान् ने गूढ़ाभिप्राय सोचने समझने की शक्ति नहीं दी वे

केवल सांसों वाले शोचा करते हैं। प्राण शक्ति सर्वत्र व्याप्त है जहां श्वास चले वेग। तो वहीं प्राण हैं यह विचार मूर्खों का है। अन्न फल शाक मूलादि सब में प्राण हैं तभी तो अन्नादि खाने से शरीरस्थ प्राण शक्ति हृष्टपुष्ट होती है पौर्णमासेष्टि वादि वेदोक्त इष्टियों में शुक्ल यजु० अ० १। २०।

प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धाम् ॥

इस मन्त्र को पढ़ के पुरोडाशार्थ तण्डुल पीसने का विधान किया है इस मन्त्र का अभिप्राय शतपथ ब्राह्मण में लिखा है जिस शतपथ कृत व्याख्यान को मानने की प्रतिज्ञा स्वामी दयानन्द जी भी कर गये हैं।

स यदाह प्राणाय त्वोदानाय त्वेति तत्प्राणोदानौ दधाति व्यानाय त्वेति तद्व्यानं दधाति दीर्घामनुप्रसितिमायुषे धामिति तदायुर्दधाति ॥

भा०—तण्डुल पीसते समय वह अध्वर्यु जो कहता है कि हे हविः ! प्राण और उदान के लिये मैं तुमको पीसता हूं सो इस कथन से उस तंडुल चूर्ण में प्राण और उदान को स्थापित करता, व्यान के लिये तुम को पीसता हूं ऐसे कथन से

उसमें व्यान को धारण करता हूं। दीर्घ आयु के लिये, ऐसे कथन से आयु को उस में स्थापित करता हूं तब समाजी से पूछना चाहिये कि पुरोडाश के आटा में यहां प्राण प्रतिष्ठा क्या नहीं की है क्या समाजी लोग पुरोडाश के आटा की नाड़ी वैद्य डाक्टरों को दिखावेंगे ? क्या नाड़ी देखने से प्राण शक्ति की सत्ता जानी जा सकती है ? अर्थात् कदापि नहीं ? निर्बीज समाधि के समय योगी के शरीर में श्वास रु-कने के साथ २ नाड़ी चलना भी बन्द हो जाता है महीनों और वर्षों तक की समाधि होती है उस समय स्थूल प्राण शक्ति मन में लीन हो जाती है परन्तु सूक्ष्म प्राण शरीर में र-हते हैं इसी से योगी जीवित रहता है तब क्या समाजी लोग डाक्टर वैद्य को नाड़ी दिखाके प्राण सत्ता का होना न होना सिद्ध कर सकेंगे ? चाहे यों कहो कि प्राण शक्ति दो प्रकार की है एक स्थूल द्वितीय सूक्ष्म जो सूक्ष्म प्राण हैं वे ही अन्न घास वृक्ष वनस्पति कन्द मूल फलादि में और समाधि में भी रहते हैं वे ही स्थूल प्राण के पोषक और उत्पादक हैं स्थूल प्राण का नाश है सूक्ष्म का नहीं, ये सूक्ष्म प्राण ही मूर्त्ति में भी प्रतिष्ठित किये जाते हैं। यह बात भी अनुभव साध्य है, कि जैसे किसी ब्राह्मण के बालकका ठीक २ शास्त्र विधिसे य-ज्ञोपवीत संस्कार कराया जाय, तो संस्कार होजाने पर वह

बालक होने पर भी कि जो संस्कार से पहिले था कुछ दशा बदल जाती है कुछ तेज वा सौम्य धर्मभाव प्रत्यक्ष दीखने लगता है वैसे ही प्राणप्रतिष्ठा होजाने पर मूर्त्ति की भी दशा बदल जाती है मूर्त्ति में कुछ और ही भाव होजाता है जैसे हम संस्कृत असंस्कृत को भिन्न २ विचारसे देखते और मानते हैं वैसे मूर्त्ति का भी प्राणप्रतिष्ठा रूप संस्कार करना शास्त्र का विधान है। वास्तवमें वेदके सिद्धान्तानुसार प्राण नाम ईश्वर देवका है उस ईश्वर के भाव का प्रतिमा में स्थापित करना यह हमारे लिये है क्योंकि ईश्वर देव प्रथम से ही सर्वत्र है पर हमारे ज्ञान पर अविद्या का आवरण होने से ईश्वर भाव से हम उन मूर्त्तियों को तावत् नहीं देखते मानते कि जब तक उनमें प्राणप्रतिष्ठा न करलें इससे हमारे भाव को ठीक करने के लिये ऋषियों ने प्राण प्रतिष्ठा का विधान किया है। जैसे कोई पुरुष किसी स्त्री को अपने घरमें रखले और स्त्री पुरुष दोनों आपस में कहलें और मानभी लें कि हम पति पत्नी हुए तो इतना करने मात्र से दोनों के मनमें पति पत्नी भाव ऐसा दृढ वा चिरस्थायी कदापि नहीं होगा कि जैसा वेद मन्त्रों द्वारा हुए विवाह से होता है। वैसेही मूर्त्ति में ईश्वर देव की भावना भी प्राण प्रतिष्ठा संस्कार से जैसी होती है वैसी मान लेने मात्र से नहीं हो सकती, इसलिये वेद मन्त्रों,

से प्राण प्रतिष्ठा नामक संस्कार शास्त्रकी आज्ञानुसार किया जाता है।

यदि कोई मनुष्य कहे कि जो क्षमा पृथिवी में है वह मेरे शरीरमें आवे शान्त पदार्थों में जो शान्ति है वह मुझमें आवे तो इसका अभिप्राय यह नहीं माना जाता कि शान्ति वा क्षमा कोई वस्तु देशान्तर वा वस्त्वन्तर से उठकर मुझ में आवेगी किन्तु अभिप्राय यह माना जाता है कि शान्ति वा क्षमा को भङ्ग करने वाले कारण मुझमें प्रकट न हों तो क्षमा शान्ति स्वयमेव प्रतिष्ठित रहेगी वैसे ही यहां मूर्त्ति में भी प्राण नामक ईश्वर शक्ति वा ईश्वर सत्ता पहिले से ही विद्यमान है उस ईश्वर सत्ता की भावना को धक्का देने वाले जो कारण हैं वे हमारी बुद्धि वृत्तिमें बाधा डालने वाले न हों हम ईश्वर भावसे निरन्तर मूर्त्तिको देखा जाना करें उसमें ईश्वर को प्रतिष्ठित ही मानें यही प्राणप्रतिष्ठा संस्कार का तात्पर्य है। प्राण नाम ईश्वर का वेदान्त में प्रसिद्ध है अब आशा है कि प्राणप्रतिष्ठा का उत्तम अभिप्राय पाठक लोग समझ गये होंगे।

प्रश्न (२०) द्विजों के लिये वेद शास्त्रों में नित्य कर्म (पञ्चयज्ञ) सन्ध्योपासनादि गायत्री जपादि का विधान किया है उनमें जड़ मूर्त्तियों का भी पूजन लिखा है या नहीं ? देवता

किसको कहते हैं ? और वेदमें देव पूजन का क्या विधान है कृपया स्पष्ट २ बतलाइये ? ॥

उत्तर (२०) तुम लोग समाजियों से यों पूछो कि-हे स-माजी ! ठीक २ बतलाइये कि सन्ध्योपासन गायत्री जपादि का नाम पञ्चमहायज्ञ कहां लिखा है ? और नित्य कर्म पञ्चम-हायज्ञादि के साथ माता पितादि के चर्म मांस रक्त हड्डी मल मूत्रादि मय शरीर मूर्त्तियों का पूजन लिखा है या नहीं ? यदि कहें कि हमारे प्रश्न का उत्तर न देकर हम पर उलटा प्रश्न क्यों करते हो ? तब यह कहना चाहिये कि हमारा प्रश्न भी तुम्हारे प्रश्न का एक मुख तोड़ उत्तर है क्योंकि मल मू-त्रादि स्वरूप घृणित शरीर मूर्त्तियों का पूजन नित्य कर्म में तुम्हारे मतानुसार न होने पर भी तुम ऐसी घृणित मूर्त्तियों का पूजन मानते हो अर्थात् अपवित्र मूर्त्तियों का पूजन स्वयं मानते और पवित्र मूर्त्तियोंके पूजने वालों पर प्रश्न करते हो यह तुम्हारा प्रश्न ऐसा ही है कि जैसे कोई पापी मनुष्य पु-ण्यात्मा को पापी ठहराने का उद्योग करे। देव-ता किस को कहते हैं ? और वेद में देव पूजन का क्या विधान है इत्यादि का उत्तर रूप प्रश्न समाजी पर यह है कि माता पितादि किसको कहते हैं और वेद में माता पितादि के पूजन का क्या विधान है ? (नैव स्त्री न पुमानेष०) इत्यादि प्रमाण के अनुसार चेतन जीव जैसे

किसी का पति नहीं होता वैसे वह किसी का माता पिता भी नहीं हो सकता इस दशा में मांस रुधिर हड्डी मल मूत्रादि स्वरूप प्रत्यक्ष शरीर को ही माता पिता कहना मानना पड़ेगा इससे घृणित जड़ शरीर मूर्त्ति का पूजन समाजी मत में सिद्ध हो जायगा। और अमुक प्रकार के माता पिताका पूजन नित्य वा कब २ करे ऐसा प्रमाण समाजियों के माने वेद में कभी त्रिकाल में भी नहीं मिलेगा। इस से समाजी का मन्तव्य वेद विरुद्ध और युक्ति विरुद्ध होने से समूल खण्डित होजाता है॥

अब सनातन धर्म के मन्तव्यानुसार बीसवें प्रश्नका उत्तर देखिये जो हठ दुराग्रह छोड़के पक्षपात शून्य आंखों से देखने पर समाजीके लिये भी उपकारी होगा। और सनातनधर्मियों के लिये तो सर्वांशमें उपकारी ही है। सन्ध्या तर्पण पञ्चमहायज्ञादि और अग्निहोत्रादि नित्यकर्म अनेक हैं। मनमानी धींगा धींगी चलाने और ध्यान न देने आदि कारणोंसे स्वा०दया० जीने नहीं जान पाया था कि पञ्च महायज्ञ कौन२ हैं इसी कारण सन्ध्योपासन और अग्निहोत्रको भी अज्ञान वश पांच महायज्ञोंमें परिगणित करके स्वा०दयानन्दजी अपने पुस्तकोंमें लिख गये। अबतक किसी २ साक्षर समाजी को ज्ञात भी हो गया है कि

सन्ध्या अग्निहोत्र पञ्चमहायज्ञों में नहीं हैं तो भी ये लोग अपनी यही अज्ञान परम्परा को चलाते जाते हैं। सन्ध्योपासन अग्निहोत्र सायं प्रातःकाल के नियत कर्म हैं और पञ्चमहायज्ञ मध्याह्न के कर्म हैं इन सब कर्मों के क्रम का विचार अष्टादश स्मृतियों में से दश स्मृति में किया है और आह्निक सूत्रावली पुस्तक में सभी नित्य कर्मों की विशद पद्धतियां बन कर मुम्बई में छपचुकी हैं उस सूत्रावली में सब कर्मों के पूरे पूरे प्रमाण भी उस २ कर्मके साथ ही छपे हैं। वहां भी सन्ध्या और अग्निहोत्रादि कर्मों को पञ्चमहायज्ञों में नहीं गिना गया समाजियों ने अबतक पांच महायज्ञ मात्र को ही अपने अज्ञान से नित्य कर्म के अन्तर्गत माना है जो मनु आदि के अनेक धर्मशास्त्रों में साफ २ लिखा है। मनुस्मृति अ० २ ब्रह्मचारी के प्रकरण में लिखा है कि—

नित्यंस्नात्वाशुचिःकुर्याद्देवर्षिपितृतर्पणम्।
देवताभ्यर्चनं चैव समिदाधानमेव च॥

ब्रह्मचारी पुरुष नित्य नाम प्रतिदिन प्रातः स्नानके पश्चात् देव ऋषि और दिव्य पितरों का तर्पण तथा सन्ध्योपासन करके समिदाधान करे और उस के पश्चात् शिव विष्णु आदि देवमूर्त्तियों का पूजन नित्य नियम से किया करे। मनु-

स्मृति के सब टीकाकारों ने साफ २ शब्दों में देवता पद से देवताओं की प्रतिमाओं का ग्रहण किया है। और गृहाश्रम प्रकरण मनु० अ० ४ में -

पूर्वाह्णएवकुर्वीत देवतानांचपूजनम् ।

मध्यान्ह से पहिले चार छः घड़ी दिन चढ़े गृहस्थ ब्राह्मणादि सभी द्विज विष्णु शिवादि देवताओं की प्रतिमाओं का नित्य नियम से पूजन किया करें। यहां भी मनु के सब टीकाकार विद्वानों ने देवता पद से देव प्रतिमाओं का पूजन लिखा है। इस में यदि कोई यह शङ्का करे कि देवता पदसे देवता की प्रतिमा का ग्रहण होने में क्या प्रमाण है ? प्रमाण न होने की दशामें टीकाकारों की बात अमान्य क्यों नहीं मानी जाती ? तब इस का उत्तर यह है कि ठीक विद्वान् वही है जो युक्ति प्रमाण से विरुद्ध कुछ न कहे। तदनुसार मनु के टीकाकार विद्वानों का कथन भी प्रमाण से विरुद्ध नहीं है तुम को अपने अज्ञान से प्रमाणविरुद्ध दीखता है। पाणिनीय अष्टाध्यायी व्याकरण सूत्र अध्याय ५ पाद ३ सूत्र ९९ में लिखा है कि-

जीविकार्थे चापण्ये ।

अर्चासुपूजनार्थासु चित्रकर्मध्वजेषु च ।
इवेप्रतिकृतौलोपः कनोदेवपथादिषु ॥ १ ॥

जो प्रतिमा पूजने के लिये बनायी जाती हैं उन पूजनार्थ प्रतिमाओं में चित्र नाम [तस्वीरों में] और ध्वजागत चिन्हों में इवार्थ प्रतिकृति में कन् प्रत्यय का लुक् हो जाता है। पूजनार्थ प्रतिमाओं के-विष्णुः। शिवः। रामः इत्यादि उदाहरण हैं। अश्वः। गौः। हस्ती। इत्यादि चित्र कर्म के उदाहरण हैं। गरुड़ः। कपिः। इत्यादि ध्वजा के उदाहरण जानो॥

विष्णोरिव प्रतिकृतिःविष्णुः अश्वस्येव प्रकृतिरश्वः। गरुडस्येव प्रतिकृतिर्गरुडः। कपेरिव प्रतिकृतिः कपिः॥

जैसे ये सब उदाहरण बनते हैं और यह अर्थ होता है कि गरुड की सी प्रतिकृति नाम आकृति है जिन की ध्वजामें उन कृष्ण भगवान् का नाम गरुड़ध्वज हुआ। कपि नाम हनुमान् जी की आकृति है जिन की ध्वजा में उन अर्जुन का नाम कपिध्वज हुआ वैसे ही देव और देवता में जानो-

देवस्येव प्रतिकृतिर्देवः तस्य देवस्यालयो देवालयः। देवतायाः प्रतिकृतिर्देवता तस्या

आगारो देवतागारः । तस्या अभ्यर्चनं देवता-भ्यर्चनम् ॥

देव की प्रतिमा का आलय नाम मन्दिर देवालय कहाता देवता की प्रतिमा का आगार नाम मन्दिर देवतागार कहाता और देवता की प्रतिमाका अभ्यर्चन देवताभ्यर्चन कहाता है। इस प्रकार देवता पदसे देवताकी प्रतिमा का पूजन के प्रसङ्ग में ग्रहण करना प्रमाण सिद्ध सर्वथा ठीक है। अब आशा है कि मूर्त्ति पूजनको ब्राह्मणादि द्विजोंका नित्य कर्म पाठक लोग समझ गये होंगे। दक्षस्मृति और आह्निक सूत्रावली आदि पुस्तकोंमें देव प्रतिमाओंका पूजन साफ़ २ नित्य कर्म लिखा है। इससे इस अंश पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है।

देवता किसको कहते हैं? इस का प्रसंगानुसार अपेक्षित उत्तर ऊपर आ गया। कि पूजन के प्रकरण में देव तथा देवता पदका अर्थ देव की प्रतिमा नाम मूर्त्ति पाणिनि व्याकरण के अनुसार है। अन्य प्रसंग में प्रसंगानुसार देवता पद का अर्थ विष्णु शिव अग्नि सूर्य वायु पृथिवी आदि सगुण साकार होगा अथवा वेदार्थ करने विचारनेके प्रसंग में मन्त्र प्रतिपाद्य प्रधान वस्तु देवता माना जायगा। वेद में देवपूजा का विधान क्या है? इस अन्तिमांश का संक्षेप से उत्तर यह है कि

वेद में जितना कर्मकाण्ड कहा है वह सभी देव पूजा का ही विधान है। स्रुच् स्रुवादिका उठाना उन का सम्मार्जनादि करना भी देव पूजा का विधान है। यज्ञ में अग्नि भी देव है पुरोडाश भी देवता है सोम भी देवता, सोमलता का पूजन भी देव पूजा है। आहुति देना भी देव पूजा है, गौ के खुर के चिन्ह रूप धूलि में भी आहुति दी जाती, है यूपस्तम्भ पर दी आहुति यूपाहुति कहाती है, वारुणी इष्टि के समय जलाशय में भी घी की आहुति दी जाती है इत्यादि सभी देव पूजा वेद के व्याख्यान में ठसाठस भरी है। वेदोक्त देव पूजन का विधान मूर्त्ति पूजा के सर्वथा अनुकूल है। क्योंकि वेदोक्त यज्ञ नाम देव पूजा में यज्ञ के सभी साधन देवता रूप माने जाते हैं। प्रणीता प्रणयन मन्त्र का प्रणीता ही देवता है। हविर्ग्रहण मन्त्रों का हविष् ही देवता है, स्रुव संमार्जन मन्त्र का स्रुव ही देवता है आज्यावेक्षण मन्त्र का आज्य देवता है वेदि प्रोक्षण मन्त्र का वेदि देवता है। प्रणीता प्रणयनादि कर्मों में उन २ मन्त्रों से प्रणीतादि के अभिमानी देवताओं की स्तुति आदि रूप पूजा वैदिक यज्ञों में जैसे होती है वैसे ही मन्दिरों में स्थापित देव प्रतिमाओं की भी पूजा होती है क्या समाजी लोग इस ठीक २ लिखे विचार को मान लेंगे।

(प्रश्न २१) यदि कोई कहे कि मूर्त्ति तो यथार्थ में पाषाण ही है परन्तु वही पाषाण भावनासे परमेश्वर बन जाता है तो फिर क्या कोई इसी भावना से बालू को शक्कर और पत्थर को रोटी मानके सुखी हो सकता है।

(उत्तर २१) बुद्धिहीन समाजों की कल्पना मात्र है कि (मूर्त्ति तो यथार्थ में पाषाण ही है) कोई भी ऐसा नहीं मानता किन्तु वेद का मत है कि विकार बुद्धि असत् है सब कार्यों में कारण भावना सत् है। तरङ्ग का जल भावना से देखो मानो क्योंकि तरङ्ग वास्तव में जल है और जैसे जल में तरङ्ग भावना अनुचित है वैसे ही ब्रह्म में पाषाणादि को भिन्न स्वतन्त्र भावना से देखना अनुचित है इसी के अनुसार पाषाण मूर्त्ति आदि सब ब्रह्म के कार्य हैं इनमें ब्रह्म भावना करना ही सत्य भावना है। बालू से शक्कर और पत्थर से रोटी नहीं बनती वा शक्कर से बालू और रोटी से पत्थर नहीं बना इससे उलटी भावना नहीं हो सकती परन्तु रोटी में गेंहू की और शक्कर में ईख की भावना हो सकती है वैसे जिस ईश्वर से सब कुछ हुआ उस सब की रग २ में ईश्वर विद्यमान है इससे सब को ईश्वर भाव से देखना चाहिये। समाजी भाई मट्टी से प्रकट हुए सुवर्ण चांदी हीरा मणि आदि जो वास्तव में मट्टी हैं क्योंकि पदार्थ विद्या से भी सुवर्णादि सब मट्टी ही

सिद्ध होंगे उन सब मट्टी रूप पदार्थों में सुवर्णादि की भावना करते हैं सो क्या यह अन्य में अन्य भावना नहीं है। सुवर्ण के आभूषणों में सुवर्ण से भिन्न अन्य कुछ भी न होने पर भी आभूषणके नामसे ही व्यवहार करते एवं आभूषण ही मानते हैं जब कि सुवर्ण से भिन्न आभूषण का कुछ भी वस्त्वन्तर होना किसी भी युक्ति प्रमाण से सिद्ध नहीं कर सकते तो आभूषण भावना क्यों करते हैं वहां ऐसा क्यों नहीं कहते कि (आभूषण यथार्थ में सुवर्ण ही है भावना से आभूषण बन जाता है) यदि ऐसा कहते नहीं और मानते हो तब भी तुम्हारा किया प्रश्न स्वयं तुम पर आगया वा नहीं यह ध्यान देकर सोचो। सूत से भिन्न वस्त्र कोई भिन्न पदार्थ है ऐसा तीन काल में भी किसी प्रमाण वा युक्ति से तुम सिद्ध नहीं कर सकते तो भी सूत भावनाको छोड़के उसमें वस्त्र भावना करते हो क्या यह अन्य में अन्य की भावना नहीं है। क्या तुम विवाह कृत्य के द्वारा अन्य किसी की पुत्री को पत्नी मानकर उसमें पत्नी भावना नहीं करते क्या विवाह विधिसे पहिले भी उसमें तुम्हारी पत्नी भावना थी? यदि पहिले नहीं थी तो तुमको मनुजी के इस कथन के अनुसार कि-

पाणिग्रहणिका मन्त्रा नियतं दारलक्षणम् ॥

मानने पड़ेगा कि विवाह सम्बन्धी मन्त्रोंमें यह शक्ति है कि जो हमारी पत्नी नहीं थी उसे वेदमन्त्रों ने पत्नी बना दिया वैसे ही जिस मूर्त्ति में प्राण प्रतिष्ठा संस्कार से पहिले देवता भावना नहीं थी उसमें वेदमन्त्रों ने ही देव भावना उत्पन्न करदी इत्यादि प्रकार से समाजियों का उत्तर देना चाहिये॥

प्र० २२-यह कहना कि हमारी बनाई हुई मूर्तियां (मन्दिर) महा ईश्वरका स्मरण कराती हैं तो यहभी ठीक नहीं क्योंकि वे तो अपने बनाने वाले सुनार पत्थरकट (संगतराश) राज आदि कारीगरों की कारीगरी सूचक है और सूर्य चन्द्रमा वृक्ष और ईश्वरीय रचना ईश्वरको स्मरण कराती हैं। मन्दिर देख ईश्वर मानना एक देशी ईश्वर जानना है। सर्व व्यापक सर्वान्तर्यामी ईश्वरको हृदयरूपी मन्दिर में ही पूजिये हृदयसे दूर ईश्वर मानना उसे सर्वान्तर्यामी नहीं मानना है।

उत्तर २२—ऊपर का प्रश्न ईसाई मुसलमान जैन बौद्ध आस्तिक और नास्तिकादि सभी के मन्तव्यों से विरुद्ध तो है ही परन्तु समाजियों के मन्तव्य से भी सर्वथा ही विरुद्ध है। सो पाठक लोगो! देखिये-जिस समय स्वा० दयानन्द जी का देहान्त हुआ उसी वर्ष अजमेर नगर में सर्वसाधारण

समाजियों का महाधिवेशन हुआ उसी में पञ्जाब के लोगों ने दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज स्थापित करने का सङ्कल्प स्वा० दयानन्द के स्मारक में किया, उसी समय स्वा० द० की जलाई हुई हड्डियोंकी भस्म एक मट्टी के पात्र में भरके अजमेर आनासागर ताल के समीप शाहपुराधीश राजा की दी हुई भूमि में गाड़ी गयी अजमेर में दयानन्दाश्रम बनाने का विचार पास हुआ, दयानन्द अनाथालय बनाया गया, डी० ए० वी० कालिज, डी० ए० वी० स्कूल, डी० आश्रम, डी० अनाथालय इत्यादि स्थानों को सभी समाजी स्वा० द० के स्मारक मानते हैं। तदनन्तर गुरुदत्त, लेखरामं और दर्शनानन्दादि के स्मारक में अनेक मकानादि अब भी बनाते जाते हैं कलकत्ते आदि अनेक नगरों में अङ्गरेजों ने महाराणी विक्टोरिया सप्तम एडवर्ड और अनेक लाटसाहबों के स्मारक स्थान तथा मूर्त्तियां बनायी हैं जो प्रत्यक्ष में सर्वानुमति से स्मारक ही माने जाते हैं। क्या वास्तव में समाजी लोग दयानन्दाश्रमादि स्थानों में राजमजूरों का ही स्मरण और ध्यान किया करते हैं? क्या समाजी लोग स्वा० दयानन्दादि के स्मारक नहीं मानते? और क्या अङ्गरेज आदि उन २ मन्दिरों और मूर्त्तियों को विक्टोरिया आदि का स्मारक नहीं

मानते ? क्या सर्व साधारण जण्टलमैन स्मारक चिन्हों के माननेवाले नहीं हैं ? तथा क्या समाजी लोग अङ्गरेजादि से भी कहते हैं कि तुम्हारे स्मारक चिन्ह विक्टोरियादि के स्मारक नहीं किन्तु उन से राज मजूरादि बनाने वालों का स्मरण हो सकता है। पाठक महाशया ! आप लोग सोच विचार करें और प्रश्नकर्त्ता समाजी से पूछें कि स्वा० दया-नन्दादि के नाम से जितने दयानन्दाश्रमादि मन्दिर अबतक समाजियों ने बनवाये हैं वे सब राज मजूरों के स्मारक हैं वा स्वा० दयानन्दादि के, क्या तुम लोगों ने राज मजूरों के स्मरणार्थ ही वे सब मकान बनवाये हैं और यह भी पूछो कि जब २ तुम लोग स्वा० दयानन्द के फोटो को देखते हो तब २ क्या उस २ फोटोग्राफर का ही ध्यान वा स्मरण तुम को आता है वा स्वा० दयानन्द का ? ॥

जब सभी समाजियोंको निर्विकल्प फोटो वा मन्दिरादि स्वा० दयानन्दादिके स्मारक मानने पड़ेंगे तो जो प्रश्न हम पर किया था वह उन्हीं लोगों के गले में जा लगा। सूर्य चन्द्रादि को समाजीने ईश्वरकी स्मारक मूर्तियां जैसे मान लिया वैसे ही भू-गोल तदन्तर गत पर्वतादिको भी स्मारक मूर्तियां समाजीको को अवश्य ही माननी पड़ेगीं, जब भूमण्डल तथा पर्वतादि स्मारक मूर्तियां मानना पड़ा तब पत्थर पर्वतादि के टुकड़ों

से बनी देव मूर्तियों को स्मारक न मानना ऐसा ही बेसमझी का काम होगा कि जैसे कोई कहै कि मैं तिलों के एक ढेर वा राशि को मानता हूं पर एक २ तिल को नहीं मानता वा सूत्रों के समुदाय वस्त्र को मानता हूं पर एक २ सूत को नहीं मानता। अर्थात् समुदाय को जिस प्रकार का मान लिया जाय वैसा ही उस समुदाय का प्रत्येक अवयव भी मानने पड़ेगा। यदि एक २ तिल में कुछ भी तेल न माना जाय तो पांच सेर तिलों में दो ढाई सेर तेल कदापि नहीं निकल सकता। जब भूमण्डल पर्वतादि सभी मूर्तियां समाजी के मत में ईश्वर को स्मारक मानना सिद्ध हो गयीं तब समाजी का प्रश्न वदतोव्याघात दोष से सर्वथा ही गिरफ्तार होगया।

पाठकगण! अब समाजी की बुद्धि का और भी विलक्षण नमूना देखिये "मन्दिर देख ईश्वर मानना एक देशी ईश्वर जानना है „ इस कथन से पहिले समाजी ने लिखा कि सूर्य चन्द्रमा और वृक्षादि ईश्वरके स्मारक हैं अब सोचिये कि सूर्य चन्द्रमा और वृक्षादिको दृष्टिगत आकृति से मन्दिर क्या बड़े बड़े नहीं दीखते? यदि दीखते हैं तो सूर्य चन्द्रादि क्या सर्व-देशी हैं वा सर्वत्र हैं? अर्थात् जब सूर्यादि प्रत्यक्ष मेंसर्वसम्मती एक देशी हैं तो उनको स्मारक मानने में ईश्वर का मानना एक देशी क्यों नहीं और मन्दिरोंका स्मारक होना एक देश

क्यों है? इसको समाजी त्रिकालमें भी सिद्ध नहीं कर सकता। इससे समाजी का लेख परस्पर विरुद्ध होने से स्वयमेव खण्डित होजाता है। आगे समाजी ने लिखा है कि "सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी ईश्वर को हृदयरूपी मन्दिरमें ही पूजिये हृदय से दूर ईश्वर को मानना उसे सर्वान्तर्यामी नहीं मानना है,, इसका संक्षेप से उत्तर यही है कि देव मन्दिर और देव प्रतिमाओं से दूर ईश्वर को मान लेने पर तो ईश्वर सर्वान्तर्यामी बना रहेगा पर हृदय से दूर मानते ही सर्वान्तर्यामी होना बिगड़ जायगा सो कैसे, यही समाजीसे पूछना चाहिये

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥

भगवद्गीता के इत्यादि प्रमाणों के अनुसार सभी सनातनधर्मी लोग हृदय से पृथक् वा दूर ईश्वर को कदापि नहीं मानते और सनातनधर्मके किसी भी ग्रंथमें ऐसा नहीं लिखा कि ईश्वर हृदय से दूर है। परन्तु समाजी को देव मन्दिर और देव प्रतिमाओं से दूर ईश्वर को मानने ही पड़ेगा यदि समाजी ऐसा न मानकर हृदय के तुल्य देव मन्दिरों और देव प्रतिमाओं में भी ईश्वर की सत्ता वा व्यापकता मानेगा तो प्रतिमा पूजन सिद्ध हो जायगा। और देव मन्दिरादि में हृदयवत् ईश्वर की सत्ता को समाजी न मानेगा तो ईश्वरको

सर्वव्यापक मानना कहना समाजीका शशशृङ्गवत् मिथ्या हो जायगा। ऊपर समाजीका कथन है कि "ईश्वरको हृदयरूपी मन्दिरमें ही पूजिये" इस पर पूछना चाहिये कि क्या हृदयरूपी मन्दिर एक देशी न होकर सर्वदेशी है? क्या ईंट मट्टी पत्थर भित्ति मकानादिमें भी हृदय है? यदि हैं कहो तो वे मनुष्यादि वत् चेतन क्यों नहीं और नहीं कहो तो तुम्हारे कथन से ही हृदय रूपी मन्दिरोंमें ईश्वर का पूजन एक देशी सिद्ध होगया तब जो दोष तुम सनातनधर्मियों पर लगाते थे उसी दोष में स्वयं फंस गये चाहें यों कहो कि जो प्रश्न हम पर करते थे उसी प्रश्न का उत्तरदायित्व स्वयं तुम पर आगया और हम पर तुम्हारा लगाया दोष इस लिये नहीं आता कि हम लोग ईश्वर को देवमन्दिर देवप्रतिमा और हृदयादि सब में मानते और सभी में उसको पूजते हैं एक में पूजन करते समय अन्य वस्तुओं को पूजन का साधन मान लेते हैं॥

(प्रश्न २३) जिस रीति से पाषाणादि मूर्तियों के द्वारा ईश्वर का पूजन किया जाता है वह वास्तव में ईश्वर की उपासना कही जा सकती है या नहीं, जो फूल, विल्वपत्र, धूप, दीप, जल, चावल इत्यादि चढ़ाये जाते हैं वे सब वस्तुयें ईश्वर को पहिले प्राप्त थीं या नहीं? और भोग लगाने से पहिले ईश्वर भूखा प्यासा था वा नहीं?।

(उत्तर २३) जिस रीति से देव प्रतिमाओं द्वारा ईश्वर का पूजन किया जाता है वही वास्तव में ईश्वर की पूजा उपासना है, नहीं शब्द ईश्वरोपासनाके विरोधी तुम लोगोंके हिस्सेमें रहा। ईश्वरके जिन २ साकार राम कृष्णादि रूपों की प्रतिमा बनाई जाती हैं उन २ रूपों को स्मारक वे प्रतिमा इसी प्रकार हैं जैसे मनुष्योंके फोटो उन २ के वास्तविक स्वरूपोंके स्मारक माने जाते हैं। जैसे उन २ ऋषि महर्षि योगी ज्ञानी आदि विद्वान् महात्माओं के फोटो देखकर दर्शकों के मनमें उन २ ऋषि आदि के ऋषिपनादि का तथा उन २ के गुण कर्म स्वभावों का आविर्भाव होता है वैसे ही ईश्वर देवताओं की प्रतिमाओं के दर्शन से दर्शकों के मनमें ईश्वरपन देवतापन और ईश्वरीय गुण कर्म स्वभावों का उद्बोधन भी अवश्य होता है। उपासना शब्दका अर्थ यही है कि उपास्य के स्वरूप और उसके गुण कर्म स्वभावों में उपासक की मनोवृत्तियों का क्रीड़ा में आनन्द प्रतीत होना यही उपासना है। उस प्रतिमाकी पूजाका अभिप्राय भी उपासना ही है। ईश्वर पूजक मनुष्य की वाणी मन्त्रादि पढ़ने में लगती, हाथ पूजा करनेमें और मन उसीका स्मरण करता है इस प्रकार मनसा वाचा कर्मणा तीनोंसे ईश्वर देवताके आराधनमें लगता है।

यदि वाणी तथा हाथ आदि से अन्य कुछ करे तो ईश्वर में मनका लगा सकना भी असम्भव है। इस से प्रतिमा द्वारा पूजा ही ईश्वरोपासना का सुगम और सर्वोत्तम मार्ग है ॥

अब रहा प्रश्न का द्वितीयांश कि फूल बिल्वपत्रादि उस २ ईश्वर देवताओं पहिलेसे ही जब प्राप्त थे तब तुमने पुष्पादि का निरर्थक समर्पण क्यों किया ? इसका भी उत्तर पाठकगण देखिये। समाजी का अभिप्राय यह है कि जो वस्तु जिसको प्राप्त हो उस वस्तु समर्पण वा भेंट उस को नहीं करना चाहिये क्योंकि समाजी का अभिप्राय यह है कि किसी सम्पन्न राजा रईस महात्मा वा श्रीमान् माता पिता गुरू आदि को भेंट वा समर्पण नहीं करना चाहिये क्योंकि हम लोग उन का उपकार करना चाहते हैं तब जो २ पदार्थ राजादि को प्राप्त हो सकते हैं उन के भेंट करने से राजादि का उपकार हमने क्या किया ? अर्थात् कुछ नहीं। सो यह समाजी का मत प्रत्यक्ष लोक व्यवहार से भी सर्वथा ही विरुद्ध है और शास्त्र से तो सर्वथा विरुद्ध है ही। देखो–लोकमें और शास्त्र में सभी मानते हैं कि राजा रईसादि और श्रीमान् माता पिता गुरु महात्मादि को जो कुछ समर्पण वा भेंट किया जाता है उस का प्रयोजन उन २ राजादि का उपकार सोचना नहीं है

किन्तु उन राजादि:को संतुष्ट प्रसन्न करके हम अपने इष्ट साधनार्थ समर्पण करते हैं। हमारा उद्देश होता है कि वे महान् पुरुष हम पर प्रसन्न हो जावें वे जानने लगें कि संसार में इन हमारे उपासक वा भक्त लोगों का जो अत्यन्त प्रिय वा बहुमूल्य वस्तु है उसका हम को समर्पण करने से ये हमारे प्रेमी भक्त वा उपासक हैं हमारी कृपा दृष्टि के अभिलाषी हैं इस लिये संसार वा परमार्थ सम्बन्ध की इनकी कामना पूरी होनी चाहिये। ऐसे विचार से संसारी कामना को या तो सिद्ध कर देते हैं अथवा उसके साधन का उचित उपाय बतलाते और आशीर्वाद देते हैं जिससे भक्तोंके मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। अनेक रईस लोग किसी अपने राजा वा लाट साहबादि से मिलते समय भेंट दिखाते हैं वा किसी बहुमूल्य वस्तु का समर्पण करते हैं। उस समय भेंट वा समर्पण करने वाला वा अन्य कोई भी यह कुतर्क नहीं करता कि यह पदार्थ जिनको भेंट किया गया उनको पहिले से प्राप्त था वा नहीं जिनको गिन्नी वा रुपया भेंट दिये जाते हैं उनके पास पहिले से भी गिन्नी रुपया होते हैं तो भी वे लोग भेंट कर्त्ताकी प्रीति और अपना मान्य करते देख प्रसन्न संतुष्ट अवश्य होते हैं यह व्यवहार जब आर्यसमाजी लोग भी अपने

मान्य राजादि के साथ करते और ऐसा कर्त्तव्य मानते हैं तब वैसा तर्क क्यों नहीं करते ? फिर सर्व स्वामी ईश्वर को समर्पण करने में कुतर्क करना-बे समझी नहीं तो क्या है ? ॥

वस्तु-देखिये परमेश्वर को सभी कुछ प्राप्त है इसी लिये उनका नाम आप्तकाम है । इसी लिये भगवद्गीता में लिखा है कि—

नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्तएव च कर्मणि ॥

ईश्वर भगवान् कहते हैं कि ऐसा कोई वस्तु संसार में नहीं जो मुझको प्राप्त न हो किन्तु सभी कुछ मुझे प्राप्त है इसीसे मैं आप्तकाम हूं तथापि संसार के उपकारार्थ अनेक काम करताहूं किन्तु कुछ प्राप्तिके लिये कुछ काम नहीं करता अर्थात् चाहना वा इच्छा भी नहीं करता कि मनुष्य लोग मुझे कुछ देकर मेरी इच्छा पूरी करें । परन्तु आगे यह भी कहा है कि—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्यु पहृत-मश्नामि प्रयतात्मना ॥

ईश्वर कहते हैं कि बिल्वपत्रादि, पुष्प, फल और जलादि पदार्थ जो मुझे भक्ति से समर्पण करता है उसको मैं सहर्ष

स्वीकार इस लिये करता हूं कि भक्त लोगों का मेरी उपासना से होने वाला कल्याण हो इत्यादि प्रमाणों में बिल्वपत्र पुष्प फलादि ईश्वर को समर्पण करना भक्ति उपासनाका ऊपरी चिन्ह शास्त्रमें दिखाया है इसलिये पहिले से ईश्वर को प्राप्त होने पर भी अपने कल्याणार्थ शास्त्र की आज्ञा से पुष्पादि का समर्पण करते हैं। जैसे समाजीका कुतर्क लौकिक युक्ति से कट गया वैसे ही उस कुतर्क में कोई प्रमाण भी नहीं और हमारे पक्षमें युक्ति प्रमाण दोनों ही विद्यमान हैं इस से सनातनधर्म का मन्तव्य अकाट्य है॥

अब रहा प्रश्न का तृतीयांश कि "भोग लगाने से पहिले ईश्वर क्या भूखा प्यासा था? वा नहीं,, इस का संक्षेप से उत्तर यह है कि जैसे पूर्वोक्त प्रकार सभी प्राप्त होने पर भी मान्य पुरुषों के तुल्य ईश्वर को पुष्पादि समर्पण करना युक्ति प्रमाण सिद्ध है वैसे ईश्वर भूखा प्यासा कभी नहीं होता तो भी जैसे समाजी लोगों के यहां जब कोई प्रतिष्ठित पुरुष आ जाता है तब यह जानते हुए भी कि ये महाशय भूखे प्यासे कुछ नहीं किन्तु उन का भोजन कर चुकना विदित भी है तब भी भोजनके तय्यार होने पर समाजी लोग उन महाशय से सादर निवेदन करते हैं कि आप के लिये भोजन तैयार

हैं इसलिये भोजन कर लीजिये । इतने ही कथन से उन का आदर होना मान लिया जाता है सभ्य समाजों में सर्वत्र यह व्यवहार उचित समझा जाता है इसी तरह शास्त्रकी आज्ञा-नुसार सनातनधर्मी लोग भोजन तैयार होने पर ईश्वरार्पण करके स्वयं भोजन करते हैं। वास्तव में ईश्वर के स्मरणका यह भी एक प्रकार शास्त्र मर्यादा के अनुसार है। कात्यायन परिशिष्ट गृह्यसूत्रस्थ भोजन सूत्रोंमें लिखा और पण्डित लोग भोजन विधि में पढ़ते हैं कि—

अन्नं ब्रह्म रसो विष्णु-र्भोक्तादेवो महेश्वरः ।
एवं ध्यात्वा द्विजो भुङ्क्ते सोऽन्नदोषैर्न लिप्यते॥

अन्न ब्रह्म रूप अन्न गतरस विष्णुरूप वा विष्णु का अंश और महेश्वर भोक्ता है मैं कुछ नहीं न मेरा अन्न है न मैं भोक्ता हूं ऐसा ध्यान करके भोजन करने वाले को अन्न का दोष नहीं लगता यह भी एक प्रकार का भोग लगाना है और एक रीति यह भी है कि सगुण भगवान् श्री शालग्रामादि की प्रतिमाओंको भोजनके समीप स्थापित करके उपासक कहता है वा अचर प्रतिमा के समीप भोजन रखके कहता है कि—

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ॥

हे गोविन्द ! यह भोजन तुम्हारा ही है तुम ही सब संसार के स्वामी हो तुम्हारा वस्तु तुम्हीं को समर्पण करता हूं । जैसे सभी प्राप्त होने पर भी पुष्पादि का समर्पण युक्ति प्रमाण से सिद्ध है वैसे ईश्वर भूखा प्यासा न होने पर भी अपनी भक्ति से ईश्वर को सन्तुष्ट कर उस की कृपादृष्टि से अपने कल्याणार्थ भोजनादि का ईश्वरार्पण करना अत्यन्त उचित और युक्ति प्रमाण सिद्ध है । योग सूत्र समाधि पाद में लिखा है कि—

सू० ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥ भा०—प्रणिधानाद् भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण मानसाद्वाचिकात्कायिकाद्वा भक्तिविशेषादावर्जितोऽभिमुखीकृतस्तमनुगृह्णाति—अभिध्यानमनागतेर्थे इच्छा—इदमस्याभिमतमस्त्विति तन्मात्रेण न व्यापारान्तरेण।

भावार्थः—फल पुष्प भोजनादि समर्पण कर सर्वात्मना स्तुति प्रार्थना करता हुआ उपासक भक्त जब विशेष भक्ति मन वाणी शरीर से करने द्वारा ईश्वर को सन्तुष्ट प्रसन्न करता है तब ईश्वर ऐसी इच्छामात्र करता है कि इस उपासक

सक भक्त का अमुक अभीष्ट सिद्ध हो जावे इतने सङ्कल्पमात्र से भक्त पुरुष कृतार्थ हो जाता है । अब ध्यान दीजिये कि निराकार ईश्वर में इच्छा रूप क्रिया उत्पन्न हो तो ईश्वर विकारी वा परिच्छिन्न अवश्य ही मानने पड़ेगा व्यापक में इच्छारूप क्रिया कदापि नहीं हो सकती किन्तु सगुण साकार मायोपाधिक ईश्वरमें उपासक भक्त पर अनुग्रहेच्छा बन सकती है । और पाठक लोगों को समाजी से पूछना चाहिये कि जैसे तुम पूछते हो कि " भोग लगानेसे पहिले क्या ईश्वर भूखा प्यासा था " वैसे तुम से भी पूछा जाता है कि आर्याभिविनय नामक पुस्तक में स्वा० दयानन्द जीने (वायवायाहि०) मन्त्र के अर्थ में लिखा है कि हम ने सुशोभित सोमरस सम्यक् तयार किया है सो हे ईश्वर! आप पी जाइये" अब समाजी को बताना चाहिये कि निराकार समाजी ईश्वर क्या सोमरस पीने से पहिले भूखा प्यासा था वा नहीं ? । आशा है पाठक लोग समाधान समझ गये होंगे ॥

प्रश्न (२४) अजन्मा अनादि परमात्मा को जो देहधारी माना है और उस पर जो चोरी जारी इत्यादिक अनेक कलङ्क लगाये हैं तो उन कर्मों का फल क्या आप को प्राप्त होगा या नहीं ? ॥

उत्तर (२४) जिस जीव को (अजोह्येकोऽनुपमाणोऽनुशेते) (न जायते म्रियते वा कदाचित्०) (अजो नित्यः शाश्वतोऽयं०) इत्यादि प्रमाणों में अजन्मा अनादि माना और तदनुसार समाजी लोग भी जीव को अजन्मा अनादि मानकर भी फिर उसको जन्म मरण वाला मानते हैं इस का फल विशेष कर समाजी लोगों को अवश्य भोगना है। हम सनातनधर्मी लोग ईश्वर को वैसा ही ठीक मानते हैं कि जैसा वह वास्तव में हैं। वह ईश्वर शरीरधारणादि सभी कुछ करता कराता हुआ भी सब से पृथक् सदा निर्लेप वा असंग है इसके अनेक दृष्टान्त शास्त्रों में दिखा दिये हैं। आकाश का दृष्टान्त भी एक प्रसिद्ध है। घट के भीतर यदि पोलरूप आकाश न हो तो वह घट नहीं कहा जा सकता जैसे आकाशांश और पृथिव्यंश के एक प्रकार का नाम घट है। घटस्थ आकाश ही मुख्यकर घटपदवाच्य इसलिये है कि घट साध्य सभी काम उसी आकाश में होते हैं पृथिवी का घेरा एक रुकावट रूप है। ऐसा होने पर अर्थात् घटके बीच परिच्छिन्न सा दीखता हुआ भी आकाश वास्तवमें अपरिच्छिन्न अखण्ड ही रहता है इसीलिये घट को इधर से उधर को लेजाने पर घटस्थ आकाश नहीं चलता किन्तु आकाशमें घट चलता है।

तथा घटके भीतर अच्छा बुरा पदार्थ रखने से घटस्थ आकाश न बनता है न बिगड़ता है अर्थात् कोई गुण वा दोष घटाकाश में नहीं लगता, घट के उत्पत्ति विनाश के साथ घटस्थ आकाश के उत्पत्ति विनाश वास्तव में नहीं होते। इसी के अनुसार आत्मचैतन्यस्वरूप सर्वव्यापी अखण्ड एक ईश्वर भी मृत्तिकास्थानी माया के अनेक शरीर धारण करता हुआ भी सदा अजन्मा अनादि अखण्ड ही बना रहता है, घटाकाश के तुल्य वह सदा निर्लेप है, आप्तकाम है इस लिये अजन्मा अनादि परमात्मा के देहधारी होने में कुछ भी दोष नहीं है। ऋगादिमन्त्रसंहितास्थ पुरुषसूक्त में लिखा है कि—

पादोऽस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥

यहां स्पष्टाक्षरार्थ यह है कि इस पूर्वोक्त पुरुष का एक पाद नाम चतुर्थांश सब प्राणीमात्र हैं अर्थात् इसी चतुर्थांशमें सभी अवतारादि देव मनुष्यादि शरीर धारण करता है और इस ईश्वर का त्रिपाद द्योतनात्मकस्वरूप में सदा अमृत रहते हैं यहां तीन पाद को अमृत कहने की स्पष्ट अर्थापत्ति यही है कि सब प्राणीरूप एकपाद ईश्वर ही मृत नाम जन्म मरण वाला है। यही भगवद्गीता में भी लिखा है कि—

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेनस्थितो जगत् ॥

वेद में लिखे अनुसार एक चतुर्थांश से इस सब संसार को थामकर स्थित हो रहा हूँ ऐसा भगवान् कहते हैं अर्थात् जैसे उपादान कारणरूप पृथिवी सर्व अपने सब घट पट वृक्षादि विकारों में अन्वित रहता हुआ सब की सत्ता को अपनी सत्ता से स्थिर किये हुए है वैसे ही सब का उपादान ईश्वरभी आकाशादि नाम रूपोंसे सबमें अन्वित रहता हुआ सबका स्तम्भन किए हुए है। विकार वस्तुओंका आधार वा थांभनेवाला सदा सर्वत्र उपादान कारणही होता है। आकाश वायु आदि भी उपादान होनेसे ही कार्य पदार्थों का आधार बनते हैं। और जब वेदमें स्पष्ट लिखा है कि—

सएवजातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जना-
स्तिष्ठति सर्वतो मुखः। शु० यजुः० अ० ३२।

वही उत्पन्न व प्रकट हुआ और वही प्रकट होगा तथा वही सब प्राणियों के भीतर चैतन्यरूपसे विद्यमान है उत्पत्ति और प्रकट होना एक ही बात है प्रकट नाम दृष्टिगोचर होना माता के उदर से बाहर आने पर दृष्टिगोचर होता हुआ सन्तान उत्पन्न हुआ कहाता है, जात, जनिष्यमाण जन्म इत्यादि एकही जन धातुसे बने शब्द हैं ऐसी दशामें ईश्वर ही

जन्म लेने वाला और वही अजन्मा भी वेदके प्रमाणोंसे सिद्ध होता है तब यदि कोई शंका करे कि परस्पर विरुद्ध दो धर्म एक वस्तु में कैसे हो सकते हैं ! तो इस का समाधान सक्षेप से यह होगा कि वास्तव में तो ईश्वर क्या जीव भी अजन्मा वा अज है किन्तु जन्म लेना औपाधिक नाम उपाधि सम्बन्ध से अवास्तविक है। घड़ा बनाते समय वास्तव में घटाकाश का निर्माण कुम्हार नहीं करता वा नहीं कर सकता और केवल मट्टी के कपालों का नाम घट नहीं हो सकता किन्तु उस के भीतर पोल होना भी अत्यावश्यक है क्योंकि पोल में ही जल भर लाना आदि घटसाध्य काम होते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि वास्तव में घटस्थ आकाश उत्पत्ति विनाश रहित होने पर भी प्रत्यक्षमें परिच्छिन्न दीखता हुआ घटाकाश व्यवहार दशामें उत्पन्न हुआ माना वा कहा जाता है। मट्टी का घेरा और उस के भीतर का आकाश दोनों ही घट कहाते हैं इसी लिये (द्यौरसि पृथिव्यसि०) इस यजुर्मन्त्र में आकाश पृथिवी दोनों के अंशका नाम उखा अर्थात् हण्डी रक्खा है। यहां मट्टी के घेरा रूप घट उपाधि के साथ सम्बद्ध आकाश का प्रदेश वास्तव में जन्म रहित होने पर भी उपाधिके साथ उत्पन्न हुआ सा कहाता है। वैसे ही ईश्वर

भी सब से पृथक् रहता हुआ आकाशवत् शरीर रूप उपाधियों में प्रकट होने के कारण व्यवहार में उत्पन्न होने वाला कहाता है इस से परस्पर विरुद्ध दो धर्म उस में नहीं हैं। और ऐसी दशा जीव की भी है जीव भी वास्तव में अजन्मा होने पर भी जन्म मरण धर्म वाला कहाता है। सो अज वा अजन्मा शब्दों का अभिप्राय यह है कि जो अपने स्वरूप से च्युत न होकर भूत भविष्य वर्त्तमान में एक रस विद्यमान रहे जिसके स्वरूप का परिवर्त्तन परिणाम कभी न हो वही अज है और जन्म का अर्थ वा आशय यह है कि जिस के बिना शरीरादि की उत्पत्ति न हो सके इस से वह घटस्थ आकाशादिवत् जन्म लेने वाला कहाता है। अब हम भी प्रश्नकर्त्ता समाजी महाशय से पूछते हैं कि जब (स एव जातः) इत्यादि वेद के प्रमाणों से वही ईश्वर जन्म लेता है यह सिद्ध है तब ईश्वर को जन्म ले सकने से रोकने रूप अपराध का फल आप को प्राप्त क्यों न होगा? साथ ही यह पूछा जाता है कि जब परमात्मा को सर्वशक्तिमान् मानते हो तो जन्म लेने वा किसी को दर्शन देने आदि की शक्तियों के उस में न होने पर वह सर्व शक्तिमान् कैसे हुआ?।

रहा चोरी जारी आदि कलङ्क लगाना सो यह कैसे

आकाशमें कालापन आदि नहीं लिपता वैसे परमेश्वर भी जब निर्लेप है तब उसमें तुम्हारे समाजियोंके लगाने से मन माने कोई भी गुण दोष नहीं लग सकते। सनातनधर्मी तो भगवान्में कभी कोई भी दोषारोप नहीं करता किन्तु चोरी जारी शब्दों के द्वारा भी उस की स्तुति करते और मानते हैं कि (अनेकजन्मार्जितपापचौरम्) अनेक जन्मोंके सञ्चित भक्त जनों के पापों को चुरा लेने वाला भगवान् है। चोरी किया माल कहीं न कहीं रहता और उस का खुफिया पुलिस पता भी लगा सकती है परन्तु जिस के चुराये पापादि का कभी कहीं पता भी न लगे वह अद्भुत चोर अवश्य माना जायगा। चोरी की परिभाषा लोक में यह है कि अपने स्वार्थ के लिये अन्य के पदार्थ को उस के स्वामी की आज्ञा के बिना [यह जानते हुए कि मेरे इस काम से स्वामी को दुःख होगा] उस के धनादि का हरण करना चोरी कहाती है। यहां स्वार्थ सिद्धि के लिये अन्य को दुःख देने की चेष्टा होना यही पाप का हेतु है। भगवान् परमेश्वर को लीला इस अभिप्राय से सर्वथा विरुद्ध थी क्योंकि आप्तकाम होने से भगवान् का स्वार्थ लेशमात्र भी कुछ नहीं तथा भक्तजनोंके पापोंको [यह जानते हुए कि हमारे इस काम से पाप के स्वामी भक्त को वास्तविक सुख होगा] उसके पापादि को चुरा लेना यही

काम यहां चोरी कहाता है इससे ईश्वर की स्तुति निकलती है किन्तु निन्दा लेशमात्र भी नहीं है । चोरीपन यहां इतना ही है कि जैसे स्वामी के परोक्षमें उसका धनादि लिया जाता है वैसे यहां भी भक्त के न जानते हुए ही पाप हर लिये जाते हैं और माखन चुरानेमें भी यही बात थी कि जिन२ गोपियों के घरों में माखन चुराके खाने के लिये कृष्ण भगवान् जाते थे वे सदा ही देवी देवताओं से प्रार्थना किया करती थीं कि बालरूप कृष्ण भगवान् हमारे घरमें माखन चुराके खावें और हम उन को कहीं छिप कर देखें तो हम कृतार्थ हो जावें अर्थात् हमारा मनोरथ सफल हो बालकृष्ण भगवान् अन्तर्यामी होने से सब जानते थे कि हमारा यह लीलावतार है यहां दिखाई लीलाओंके स्मरण से भी भक्तोंका उद्धार होगा और पद्मपत्रवत् हम तो स्वतः निर्लिप्त हैं । भक्तोद्धार ही मुख्य प्रयोजन था ॥

अब रहा जार कर्म का दोष सो जब उस का भी अभिप्राय लोक में प्रसिद्ध है कि विषय भोगकी उत्कट अभिलाषा से अन्य की स्त्री से संयोग करना व्यभिचार कहाता है ऐसे अभिप्राय से जारकर्म भगवान् बालकृष्ण जी ने कदापि नहीं किया किन्तु आप्तकाम होने से विषय वासना जब भगवान्

में नहीं थी, न है तब भक्त गोपियों को कृतार्थ करने के लिये वास्तविक जारी न होने पर भी भक्त प्रसादनार्थ कृत्रिम नकली नाटक वह भी कर दिखाया जिस से भक्तवत्सलता के अस्तित्व की हानि न हो यह भी प्रयोजन था। गोपियां भगवान् की योगमाया से मोहित होचुकीं थीं और कामवासना के साथ भगवान् से प्रेम करना चाहतीं थी ऐसी दशा में यदि गोपियों का सर्वथा अनादर किया जाता वा कुछ भी आदर न किया जाता तो परिणाम यही होता कि गोपियां पहिले से भक्त होने पर भी ईश्वर भक्ति से आगे विमुख हो जातीं और भगवान्की निष्ठुरता निर्दयता संसार में प्रचरित हो जाती। तथा भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने प्रतिज्ञा की है कि-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैवभजाम्यहम्।

जो मनुष्य जिस प्रकार से मेरी ओर को चला करते हैं उन को मैं भी उसी प्रकार से मिलता हूं अर्थात् कंस शिशुपाल जरासन्धादि जो २ शत्रुभाव से सदा देखते थे उन को शत्रुभाव से मिले, भक्तों को भक्ति से मिले कामी भक्तों को कामरूप से मिले सो यही न्यायानुकूल उचित भी है। यद्यपि निष्काम जितेन्द्रिय हो के भक्ति उपासना करने की अपेक्षा

कामी होकर काम वासना पूर्त्यर्थ ईश्वरोपासना वा भक्ति करना अवश्यमेव निन्दित है तथापि ईश्वर भक्ति से सर्वथा विमुख कामी स्त्री पुरुषों की अपेक्षा काम वासना पूर्त्यर्थ भी ईश्वर भक्ति करना अच्छा अवश्यहै। इस के अनुसार गोपियां भी उच्च कोटिसे निन्दित और तदपेक्षा निकृष्ट कोटि से अच्छी थीं परन्तु भगवान् सर्वथा निरञ्जन थे। यदि अब भी कोई स्त्री वा पुरुष कामी होकर भी ईश्वर भक्ति करे तो अन्त में गोपियों के तुल्य कामवासना से छूट कर परमानन्द के भागी होंगे। इस से भगवान् को चोरी जारी का दोष न किसी ने लगाया न कोई लगा सकता है केवल प्रश्नकर्त्ता समाजी का अज्ञान मात्र है॥

प्रश्न (२५) जो आप का ईश्वर देहधारी है तो उस का शरीर ईश्वर है या दोनों ?॥

उत्तर २५-(अजोह्येकोजुषमाणोऽनुशेते) इस श्रुति के अनुसार जीव को अज अजन्मा मानते हुए भी तुम शरीर का जन्म मानते हो वा जीवका अथवा दोनोंका? जीवका वा दोनों का जन्म कहोगे तो अज कहने के साथ विरोध होगा। यदि शरीर मात्र का जन्म कहो तो मुर्दा का जन्म होना चाहिये। इस प्रश्न का उत्तर तुम को देना चाहिये। अब हमारा उत्तर

यह है कि तुम्हारा प्रश्न ही ठीक नहीं क्योंकि यदि किसी मनुष्य को तुम शक्तिमान् वा समर्थ बलवान् कहते मानते हो तब तुम से कोई पूंछे कि उस का शरीर शक्तिमान् है वा दोनों ? ऐसे प्रश्न का तुम क्या उत्तर दोगे ? सो बताओ। वास्तव में सत्य तो यह है कि प्रश्नकर्त्ता आदि समाजी लोग नहीं जानते कि ईश्वर क्या वस्तु है ?। क्योंकि दार्शनिक लोगोंका मन्तव्य है कि—

यस्य साम्यातिशयविनिर्मुक्तमैश्वर्यं स ईश्वरः।

योगदर्शने

शक्ति, सामर्थ्य, ऐश्वर्य, तथा माया इन शब्दोंका एक अभिप्राय है जिसका ऐश्वर्य शक्ति वा सामर्थ्य तुल्यता और अधिकता से रहित हो वही ईश्वर है अर्थात् जिस के तुल्य वा जिस से अधिक अन्य किसी भी वस्तु का ऐश्वर्य वा शक्ति नहीं वही ईश्वर है वेदानुयायी मात्रका यही निश्चित मन्तव्य है। इस का उदाहरण सामवेदीय तलवकारोपनिषद्में लिखा है कि अग्नि वायु आदिके अभिमानी देवोंको जब अभिमान हो गया कि संसार भरको क्षणमात्रमें भस्म करदेने वा सब को उड़ा देने की शक्ति जब हम अग्नि वायु आदिमें है तब हम से अधिक बड़ा ईश्वर अन्य कौन होसकता है ऐसा अभिमान

जब भगवान्‌को ज्ञात हुआ तब परमेश्वरने यक्षरूपसे प्रकट हो कर अग्नि वायुके सामने एक तृण धर दिया कि इसे जलादो, पूरा २ उद्योग करने पर भी अग्निवायु एक तृण को भी नहीं जला सके न उड़ा सके इस उपाख्यानके कई उत्तम अभिप्राय हैं कि अभिमानी लोग अपने दुरभिमान में डूबे होने से ईश्वर को नहीं जान पाते, द्वितीय अग्निवायु आदि में जो शक्ति है वह ईश्वरीय शक्ति है ईश्वरीय इच्छा न होने पर अग्नि वायु आदि किसीको जला वा उड़ा नहीं सकते, इसी प्रकार ईश्वरेच्छा न होने पर अग्निने प्रह्लाद भक्त को नहीं जलाया, सीता जी को भी अग्नि ने नहीं जलाया था। और ईश्वरेच्छा होने पर अग्नि न होने पर भी पूर्ण पतिव्रतादि के मुख से अग्नि निकलती और वे जलकर भस्म हो जाती हैं उनको जीवित शरीर के दाह से कष्ट न होना भी ईश्वरानुग्रह का ही एक प्रत्यक्ष उदाहरण है। तृतीय-शक्ति वा ऐश्वर्यकी अधिकता का बोध साकार में ही हो सकता है निराकार में नहीं इसी लिये परमेश्वर ने यक्ष रूप से प्रकट होकर अग्नि वायु आदि की परीक्षा ली। चतुर्थ एक ही शक्ति सब में नाना रूपोंसे विभक्त होकर विद्यमान है इत्यादि। ऐश्वर्य शक्ति वा माया के साथ सम्बन्ध होना ही ईश्वर की सगुणता है, जैसे

जिसके आधीन फौज पलटन अस्त्र शस्त्र खजाना, तथा स्वदेश पर शासनाधिकार हो वह राजा है, फौजादि के न होने पर केवल शरीर राजा नहीं रहता और फौजादि भी राजा नहीं होते वैसे ही मायाशक्ति ईश्वर नहीं और न माया सम्बन्धसे रहित परमात्मतत्त्व ईश्वर हो सकता है। इसी लिये सगुण साकार का नाम ईश्वर है। प्रयोजन यह कि ईश्वर का शरीर बहुविध है सब संसार विराट् शरीर है जिसके पृथिवी पग सूर्य चन्द्रमा चक्षु आकाश उदर हैं इत्यादि शरीर मात्र ईश्वर नहीं, और दोनों भी ईश्वर नहीं हैं क्योंकि दोनों को ईश्वर माना जाय तो द्वैतभाव सिद्ध होगा। इससे ईंधन से ही अग्नि का तेज बढ़ने के तुल्य माया के सम्बन्ध से ही ईश्वर की ईश्वरता का तेज प्रकट होता है इसी से ईश्वरता को मनुष्य कुछ जान सकता है अर्थात् माया ब्रह्म के संयोग का नाम ईश्वर कहें तो अनुचित नहीं है।

प्रश्न (२६) क्या आप अज निराकार की मूर्त्ति तस्वीर बना सकते हैं? क्या आकाश, सुख दुःख, आत्मा, मन, वायु भूख, प्यास, इत्यादि की मूर्त्तियां बनाके दिखाओगे? ॥

उत्तर २६—जब तुम जीव को अज अनादि मानते हो और जीव की लम्बाई चौड़ाई मुटाई काला पीला श्वेतादि कोई

भी आकार नहीं दिखा सकते तो भी स्वा० दयानन्दादि जीवों की फोटो रूप सैकड़ों मूर्त्तियां तुमने बनालीं और आगे २ बनाते जाते हो क्या उक्त फोटो मूर्त्तियां अज निराकार की नहीं हैं? यदि कहो कि हम शरीरों का फोटो लेते वा ले सकते हैं अज अतीन्द्रिय जीव का नहीं तो तुम्हारे सब फोटो मुर्दा शरीरों के सिद्ध होंगे। और मुर्दा तथा जीवित शरीरों के फोटो में प्रत्यक्ष भेद दीखने से जीव के सहित शरीर का फोटो मानने ही पड़ेगा। अब यदि यह कहो कि जीव के शरीरधारी होने से अज निराकार होने पर भी जीव सहित शरीर की फोटो, आदि मूर्त्तियां बन सकती हैं पर ईश्वर तो देहधारी नहीं है तब उत्तर यह है कि ईश्वर भी देहधारी होता है यह बात अवतार मीमांसा में प्रमाणित हो चुकी है—

असंख्यामूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्तिशरीरतः ।
सोऽभिध्यायशरीरात् स्वात् ॥ मनु० ॥

इत्यादि सैकड़ों प्रमाणोंसे ईश्वर का शरीर धारण करना सिद्ध है। वेद के पुरुषसूक्त में ईश्वर के सब शरीरावयवों का उल्लेख है। तथा (या ते रुद्र शिवातनूः) इस वेदमन्त्रमें ईश्वर का कल्याणकारी शरीर लिखा है अभिप्राय यह है कि

सगुण साकार ईश्वरके शरीरकी मूर्ति हम बनाते हैं निराकार को नहीं जैसे तुम शरीर से रहित अदृश्य दयानन्दादि जीवों का फोटो नहीं ले सकने पर भी शरीर सहित जीवोंका फोटो ले लेते हो वैसे हम शरीराकृति सहित अवतार धारी ईश्वर की मूर्त्तियां बनाते और ऐसाहीमानते हैं जब हम निराकार की मूर्त्तियां बनाते और ऐसा ही मानते हैं तब हम निराकार की मूर्त्ति बन सकना मानते ही नहीं तब उस अंश पर प्रश्न वा तर्क करने वाले की वेसमझी स्पष्ट है ॥

अब रहा आकाशादि की मूर्त्तियां बनी हुई दिखाना सो जैसी २ रीतियों से आकाशादि की मूर्त्तियां संसार में बन रही हैं उन को सभी लोग देख रहे हैं वे मूर्त्तियां समाजियों को नहीं दीखतीं तो समाजी मन का मिथ्या पड़दा आंखों के सामने आगया है उस धोखे की टट्टी को हटाइये तब आकाशादि की मूर्त्तियाँ साफ २ दीखने लगेंगी। देखो-भिन्न २ कमरों में आकाश की लम्बाई चौड़ाई गुलाई इत्यादि स्पष्ट दीखती है नापकर देखलो चाहें आंखोंसे देखलो बड़े लोटादि पात्रों के भीतर आकाश के अनेक छोटे बड़े आकार सभीको दीखते हैं। तुम चाहो तो घड़े का फोटो उतार लो तब उस के फोटो में भी घटाकाश दीखेगा, कमरों के भीतर लम्बाई

चौड़ाई का माप आकाश का ही है यह ध्यान देने पर ज्ञात होगा। द्वितीय शब्दकी मूर्त्तियां तो सर्वसम्मत प्रसिद्ध ही हैं तभी तो प्रश्नकर्त्ता महाशय प्रश्न लिख सके और हम दूरस्थ बैठे भी उत्तर दे सके यदि लिपि रूप सर्वानुमत शब्दों की मूर्त्तियां न होतीं तो लिखना छपाना कुछ नहीं हो सकता, वेद की मूर्त्तियां वेद के पुस्तक हैं ऐसी प्रसिद्ध मूर्त्तियों को भूल जाना वा न देख पाना क्या साधारण अज्ञान है ? ॥

पवनात्मज हनुमान् जी आदि अनेक वायु के पुत्र वायु की मूर्त्ति हैं, क्योंकि कारणके ही अवस्थान्तर का नाम कार्य होता है इसीसे मट्टीकी मूर्त्ति घट कही जासकेगी मन मूर्त्ति छाया पुरुष है और चन्द्रमा भी मनकी मूर्त्ति है क्योंकि (चन्द्रमा मनसो जातः) मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है। आत्मा की मूर्त्ति तो प्रश्न कर्त्ता स्वयं साढ़ेतीन हाथ के विद्यमान होते हुए भी क्या अपने आप को भी भूल गये ? । मनुष्यादि के सभी चेतन शरीर एक आत्माकी ही असंख्य मूर्त्तियां हैं इतनी असंख्य मूर्त्तियों के होने पर भी आत्मा की मूर्त्ति न दीख पड़ना क्या यह छोटा आश्चर्य है ? ॥

अब रहे सुख, दुःख, प्यास, इत्यादि की भी मूर्त्तियां एक रीति से मानी जाती हैं जैसे जिस मनुष्य में सोलहों

आना या तीनों विश्वे धर्म विद्यमान हो, जो एक बाल भर भी धर्म से कभी न हिगे जिस के रोम २ नस २ में ठसाठस धर्म भरा हो ऐसे मनुष्य का शरीर धर्मतत्व की अधिकता से बना होने के कारण वह मनुष्य धर्मावतार तथा धर्ममूर्त्ति कहाता है अर्थात् वह शरीर मूर्त्ति धर्म की ही मानी जाती है और यह मानना युक्ति प्रमाण से सिद्ध होनेके कारण सत्य ही है इसी के अनुसार काममूर्त्ति और क्रोधमूर्त्ति मनुष्यभी कामादिकी मूर्त्तियां जाने। वैसेही सुखमूर्त्ति दुःख मूर्त्ति, भूखमूर्त्ति, प्यासमूर्त्ति इत्यादि सब प्रकारके मानुष शरीरही सुखादिकी मूर्त्तियां मानी जायगी, जिनको सुख के साधन विशेष वा अधिकांश प्राप्तहैं वे सुखमूर्त्ति जो प्रायः अधिकाधिक दुःखितहैं वे दुःखमूर्त्ति कहाते हैं अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु नाटकों की ओर ध्यान दोगे तो ज्ञात होगा कि वे नाट्यशाला वाले लोग ऐसे काम क्रोध रोग शोकादि की कृत्रिम मानुषी मूर्त्तियों को ऐसी साक्षात् दिखा देते हैं जिस से प्रत्यक्ष वही वस्तु दीखता है। भारतदुर्दशा नामक नाटक जो भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र का बनाया है। उस में रोगादि कई अमूर्त्त पदार्थों की मूर्त्तियां दिखायी जाती हैं। इस से सिद्ध हुआ कि सभी अमूर्त्त पदार्थोंकी मूर्त्तिय

कल्पित हो चुकीं हैं तथा अब भी होती और हो सकती हैं।

२७ प्रश्न-जब कि मूर्त्तियों के उपासक देवी जीको मांस मदिरा श्रीकृष्ण महाराज को माखन मिश्री मोहनभोग, महादेव को भांग धतूरा, जगन्नाथ को दाल भात और गणेशजी को पान सुपारी भोग लगाते हैं तो क्या वाराह अवतार की मूर्त्ति को किसी भी भोग की आवश्यकता है या नहीं ?॥

उत्तर २७-राम, कृष्ण, देवी, शिव, इत्यादि सभी देवोंको भोग लगाने की चाल वा भोग लगाने का प्रमाण पृथक् २ नहीं है किन्तु देवताओं को भोग लगाना वा देवार्पण ईश्वरार्पण करने के लिये मुख्य प्रमाण यह है कि

यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नास्तस्य देवताः।

जिस उपासक मनुष्य के लिये शास्त्रमें जो भक्ष्यान्न विहित है वा जो अन्न अपने भोजनार्थ पकावे उसी अन्न का भोग अपने उपास्य देवको लगावे। जैसा प्रमाण है वैसा ही प्रचार भी देशभरमें होरहा है कि दाल भात रोटी पूड़ी शाक आदि जो २ पदार्थ पकाये जाते हैं उन्हींका भोग भी लगाया जाता है, मद्यमांस भक्षणका शास्त्रमें निषेध होने पर भी जो लोग मद्य मांसका सेवन करते हैं वे ही विशेष वा सामान्यावसरों पर मद्य मांस के द्वारा देवी का पूजन करते हैं उन को मद्य

मांस के प्रयोग का दोष भी लगता है और देवीपूजन का कुछ फल भी होता है । सात्विक रीति [फल पुष्पादि] से देवी की पूजा करने वालों की अपेक्षा वे लोग निन्दित तथा पापी भी माने जावेंगे और जो केवल मांस मद्यका सेवन करते और पूजा उपासना किसी की नहीं करते ऐसे लोगों की अपेक्षा मांस मद्य द्वारा देवी के उपासक अच्छे भी माने जावेंगे । सो सनातनधर्मियोंमें सात्विक रीतिसे देवीके उपासक ही अब भी अधिक हैं । जब कि मांस मद्य माखन मिश्री भांग धतूरा और पान सुपारी इत्यादि वस्तुओं से किसी देवताको कहीं कभी कोई भी भोग नहीं लगाता न वैसा कहीं लिखा तब समाजीके ऐसे मिथ्या लेख पर और क्या लिखा जाय ? यदि समाजी को कुछ भी सत्यका पक्ष हो तो स्वयं लज्जित होना चाहिये । भोग लगाने की रीति भोजनके समय पकाये पदार्थों से सर्वत्र होना प्रसिद्ध है । द्वितीय पञ्चोपचार तथा षोडशोपचार द्वारा देव पूजा का विधान सब देवों के लिये समान है उस में भिन्न २ देवों के पूजनार्थ भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं है । सनातनधर्मियों के लिये शास्त्रों में भोग लगाने और नैत्यक देवपूजन का जैसा विधान और जो २ पदार्थ नियत हैं वैसा ही वे लोग करते भी हैं । अब वाराह

जी को जिस पदार्थ का भोग लगाने के लिये प्रश्न कर्त्ता समाजी ने लिखा है वह पदार्थ निराकार समाजी ईश्वर के लिये शेष रह गया क्योंकि समाजी मतमें भोग लगानेके लिये कोई पदार्थ नियत नहीं किया इसी लिये स्वामी दयानन्द जी ने आर्याभिविनय पुस्तक में गुडूची के रससे निराकार ईश्वर को भोग लगाना लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि निराकार ईश्वर ज्वरादि रोगसे पीड़ित होगा। इसलिये जिस वस्तु का वाराह जी को भोग लगवाना चाहते हैं उस का भोग प्रश्न-कर्त्ता समाजी निराकार को लगाया करें क्योंकि सनातनियों ने समाजियोंके लिये ही उसका भोग त्याग दिया है।

प्रश्न २८—परमेश्वर निराकार है वह ध्यान में नहीं आ सकता इस लिये अवश्य मूर्त्ति होनी चाहिये, भला जो और कुछ भी न करें तो मूर्त्ति के संमुख जा हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम तो ले लेते हैं॥

उत्तर—समाजी ने २७ प्रश्न तो अपनी ओरसे लिखे और २८ से ३३ तक छः प्रश्न ऐसे कल्पित किये हैं कि तुम ऐसा कहो तो इसका उत्तर यह है इत्यादि। २८ आदि जैसे मन-माने प्रश्न हैं वैसा ही वैसमझी काउत्तर समाजी ने गढ़ लिया है उसका संक्षेप से सत्य उत्तर हम देते हैं देखिये जब हम

लोग ऐसा कहते मानते ही नहीं कि परमेश्वर निराकार होने से ध्यान में नहीं आता इस से मूर्त्ति होनी चाहिये किन्तु वेद के प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है कि परमेश्वर स्वयमेव साकार बनता है इसी अर्थ से उसका नाम स्वयम्भू हुआ है उसी साकार ईश्वर की मूर्त्तियां उपासनार्थ बनाई जाती हैं इस लिये स्मृति और ध्यान शब्दों पर लिखा समाजी का समाधान बिना नींव की भित्ति के तुल्य है। समाजी ने (ध्यानं निर्विषयं मनः) यह सांख्य सूत्र लिख कर अर्थ किया है कि " रूपादि विषयों को हरने वाली इन्द्रियों को जीत कर जब मन निर्विषय होता है तभी वह ध्यान में लय हो सकता है " यहां समाजीके लेखानुसार मन के लय का नाम ध्यान मान लिया जाय तो बेहोशी मूर्छा का नाम ध्यान होगा सो यह शास्त्र से विरुद्ध है सांख्य सूत्र का अभिप्राय यह है कि चक्षुरादि इन्द्रियोंके द्वारा मनमें आने वाले रूपादि विषयोंसे पृथक् हुआ ध्येय ईश्वरके चिन्तनमें लगा मन ध्यानावस्थित कहाता है। समाजी के कथन से चिन्तन का अभाव ध्यान ठहरता है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥

योग सू० पा० ३ सू० २।

भाष्यम्-तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता। सदृशप्रवाहप्रत्ययान्तरेणापरामृष्टो, ध्यानम्॥

भावार्थ—जिस पर चित्त की धारणा की हो उसी वस्तु वा देशमें ध्येय वस्तुका अवलम्बन करने वाली चित्त वृत्तियों की एक रूपता नाम तुल्य प्रवाह होना जिसमें तद्विरुद्ध वृत्ति का उदय न होना ही ध्यान कहाता है। यहां योगभाष्यकार व्यास जी ने ध्यान का ध्येय माना है परसमाजी के मत से चित्त का लय होना मात्र ध्यान है सो शास्त्र विरुद्ध है। ईश्वर देवता के रूपादि जैसे शास्त्रोंमें लिखे हैं वे इन्द्रियग्राह्य रूपादि विषयों से पृथक् हैं वेही यहां ध्येय हैं सो स्मृति पुराणादि में ध्येयका विचार यों किया है कि—

मूर्त्तं भगवतोरूपं सर्वोपाश्रयनिस्पृहम्।
एषावैधारणाज्ञेया यच्चित्तं तत्रधार्यते॥
तच्चमूर्त्तं हरेरूपं तद्विचिन्त्यंनराधिप।
तत्प्रयतामलाधारा धारणानोपपद्यते॥
चिन्तयेद्ब्रह्मभूतस्तं पीतनिर्मलवाससम्।

किरीटहारकेयूर-कटकादिविभूषितम् ॥
शार्ङ्गचक्रगदाखड्ग-शङ्खाक्षवलयान्वितम् ।
चिन्तयेत्तन्मयो योगी समाधायात्ममानसम् ॥४
तावद्यावद्दृढीभूता तत्रैवनृपधारणा ।
एतदातिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छयाकर्मकुर्वतः ॥
नापयातियदाचित्तं सिद्धांमन्येत तां तदा ॥५॥

भा०-किसी का आश्रय वा काङ्क्षा न रखने वाले भगवान् के वक्ष्यमाण जिस स्वरूप में चित्त को धारण किया जाता है इस कारण वह भगवत्स्वरूप और चित्त की एकाकारावस्था का नाम धारणा योगाङ्ग है। इसी धारणा में जब चित्त वृत्तियों का सदृश प्रवाह जल धारावत् चलता और किसी विरुद्ध वृत्ति का बीचमें प्रवेश नहीं होता उसका नाम ध्यान कहा जाता है। हे राजन्! हरि भगवान् के मूर्त्ति नाम साकार स्वरूप का विशेष चिन्तन रूप ध्यान और श्रवण करना चाहिये क्योंकि धारण और ध्यान विना किसी साकार अवलम्बके हो नहीं सकता। मुकुट और केयूर कटकादि बाहु भूषणोंसे शोभित, धनुष बाण शङ्ख चक्र गदा पद्म और खड्गधारी तथा निर्मल पीतवस्त्र धारण किये भगवान् के

स्वरूपका चिन्तन आत्मामें मन को एकाग्र करके ब्रह्मरूप हुआ योगी पुरुष करे। जब तक ऐसी धारणा दृढ न हो जावे तब तक ऐसा ही करता जावे जब भगवत्स्वरूपमें चित्त अचल हो जावे तब धारणा को सिद्ध हुई माने। इस प्रकार योग का छठा सातवां अङ्ग धारणा ध्यान साकार ईश्वर के स्वरूप का अवलम्ब करके ही हो सकता है अन्यथा नहीं। उस साकार ईश्वरके श्रुति स्मृति पुराण प्रतिपादित स्वरूप की ओर चित्त को ले जाने के लिये साकार भगवान् के नराकार विग्रहों की मूर्त्तियां बनाने का विधान है। इसी लिये मूर्त्तियां बनाई जाती हैं जब भगवत्स्वरूप की ओर चित्त जाता है तभी धारणा ध्यानादि बन सकते हैं अन्यथा नहीं इससे ध्यान पदका समाजी महाशयका किया अर्थ सर्वथा अशुद्ध वा अग्राह्य है।

आगे समाजी महाशय ने न० ९६ में स्वयं प्रश्न कल्पित किया है कि " जब परमात्मा सर्वव्यापक है तो कैसे पूजें ? " इसका स्वयं उत्तर दिया कि हां वह सर्वव्यापक है इसी लिये हृदय में ही भजिये जपिये॥

इसका उत्तर पूर्व २२ बाईसवें प्रश्न के उत्तर में सम्यक् आ चुका है इस लिये यहां उस अंश पर कुछ नहीं लिखेंगे। सर्वव्यापक शब्द पर इतना वक्तव्य है कि संसार में अनेक

दृष्टान्त विद्यमान हैं कि जो २ वस्तु सर्वव्यापक हैं वे सर्वरूप भी हैं। दिग्, देश, काल, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी ये सब ही सर्वव्यापक हैं और ये ही सबरूप हैं यह तो सामान्य है, विशेष यह है कि पृथिवी के सभी विपरिणाम रूप विकारों में पार्थिव तत्त्व अनुस्यूत वा व्यापक है इससे पार्थिव घट पटादि सभी पृथिवी रूप प्रत्यक्ष हैं। सभी वस्त्रों में कपास रुई वा सूत अनुस्यूत नाम व्यापक है इससे सभी वस्त्र कपास रुई वा सूत्र स्वरूप प्रसिद्ध हैं इत्यादि सर्वव्यापकों के दृष्टान्तों में जैसे प्रत्यक्ष से व्याप्य में व्यापक का तद्रूप होना सिद्ध है वैसे ही वेद प्रमाण से भी सिद्ध है कि—'

अग्निर्यथैकोभुवनंप्रविष्टो रूपंरूपंप्रतिरूपोवभूव ॥ कठोपनिषदि । वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् । छान्दोग्योपनिषदि ॥

अग्नितत्त्व सब दृश्य पदार्थों में व्याप्त उन्हीं २ के रूपोंसे विद्यमान है। पृथिवी के सभी विकार वास्तव में पृथिवी रूप हैं और सभी में पृथिवी व्याप्त वा ओत प्रोत है इसी के अनुसार जब ईश्वर भी वेद में लिखे प्रमाण से अग्नि आदि के तुल्य सबमें प्रविष्ट और सर्वव्यापक है तब वह सर्वरूप

क्यों नहीं है ? यह समाजी से पाठकों को पूंछना चाहिये। और यदि सर्वरूप हैं तो साकार द्वारा सिद्ध हो गया यदि नहीं कहो तो तुम्हारे निकट ऐसा दृष्टान्त कौन है जिससे सर्वव्यापक होने पर भी सर्वरूपता सिद्ध न हो। यदि आकाश को बताओ तो यह भूल है क्योंकि सर्वव्यापक आकाश सर्वरूप प्रत्यक्ष है, घट रूप भी आकाश घट रूप भी आकाश, मठ रूप भी आकाश है अर्थात् सभी वस्तुओं में उन २ के रूपों से ही आकाश अनुस्यूत है। शुक्ल यजुः संहिता अ० ३२ में देखो-

स ओतःप्रोतश्च विभूःप्रजासु ॥

वह परमात्मा सब प्रजा में ओत प्रोत है। जैसे वस्त्रोंमें सूत ओत प्रोत है इसी से सब ही वस्त्र सूत रूप हैं वैसे ही प्रजा में ईश्वर के ओत प्रोत होने पर भी सब प्रजा ईश्वर रूप क्यों नहीं मानते ? जब कि तुम्हारे मन में ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं कि सर्वव्यापक वस्तु सर्वरूप नहीं तो-

दृष्टान्तमनभ्युपगच्छन्किंसाधनः परमुपालभेत ?

इस न्याय वात्स्यायन भाष्य के लेखानुसार कि जिसके पक्ष का पोषक दृष्टान्त ही नहीं वह किस साधन से अन्य के मत पर आक्षेप कर सकता है।

हे समाजी ! तुम्हारा मत युक्तिविरुद्ध होने से जब स्वयं ज-
ण्डित हो जाता है तब तुम को अन्य के सयुक्त मन्तव्य पर
आक्षेप करते हुए संकोच लज्जा शङ्का वा भय क्यों नहीं
होता ? यदि नहीं होता तो यह धृष्टता क्यों नहीं है ?

प्र० ३०—अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भू-
तिमुपासते । ततोभूयइवतेतमो यउसम्भूत्याᳬ
रताः ॥ शु० यजु० अ० ४० ॥

भा०—प्रकृत्यादि जड कारण वा माया को ब्रह्म के स्थान
में उपासना करने वाले दुःखसागर में डूबते और कार्यरूप
पृथिवी पाषाणादि को ब्रह्म के स्थान में उपासना करने वाले
और भी घोर अन्धकार, दुःख रूप नरक में गिर के महा क्लेश
भोगते हैं ॥

उत्तर ३०—यहां समाजी ने (ब्रह्म के स्थान में) यह भाग
अपनी ओरसे मनमाना जोड़ लिया है सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों
से विरुद्ध है, यदि समाजी से कोई पूंछे कि बताओ तो सही
कि मन्त्र के किन पदों का अर्थ तुम ने (ब्रह्म के स्थान में)
ऐसा किया ? तो समाजी कुछ उत्तर नहीं दे सकते । इसका
संक्षेप से उत्तर यह है कि वेदमतानुयायी सनातन धर्मी कोई

मूर्ख मनुष्य भी कारण वा कार्य रूप जड़ की उपासना नहीं करता न मानता है किन्तु अनेक नाम रूप देवात्मक एक चेतन स्वरूप परमेश्वर के सभी उपासक हैं । इस का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि मायात्मक सभी कारण कार्यात्मक संसार को सभी सनातन धर्मी असत् वा मिथ्या मानते हैं और एक परमात्मा को सत्य मानते हैं। केवल परमेश्वर की उपासना के लिये वेदादि शास्त्र प्रमाण सिद्ध ईश्वर के माया सम्बद्ध सगुण अवतार स्वरूपों को और उन की मूर्त्तियों को ईश्वर की पूजा उपासना का युक्तिप्रमाण सिद्ध अवलम्बो मानते हैं। इस से उक्त मन्त्र में कहा दोष विशेष कर सनातनधर्मके विरोधी सभी नास्तिकादिकोंके मत्थे मढ़ा जायगा। जो हिन्दु धर्म पूजा उपासना को सर्वथा भूले हुए केवल स्त्री पुत्रादि का वा नगद नारायण को ही सर्वोपरि मान के इसी विचारमें जन्म पर्यन्त लगे रहते हैं वे भी जड़ोपासकोंमें ही गिने आवेंगे। पाश्चात्य विज्ञानी साइंस फिलासफी को ही परम कर्त्तव्य सीमा मानने वाले और तदनुयायी नमाजी, समाजी सभी कार्य कारण जड़के उपासक (एतावदिति निश्चिताः) सदा ही अज्ञानान्धकार [आत्मज्ञान के सुख वा प्रकाश से हीन] में गोते खाया करेंगे यही वेद मन्त्र का अभिप्राय है॥

प्रश्न ३१—मृच्छिलाधातुदार्वादि—मूर्त्तावीश्वरबुद्धयः। क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते ॥

मृत्तिका, शिला,, धातु, काष्ठादि से रचित मूर्त्तियों में जो पुरुष ईश्वर बुद्धि करते हैं, वे मूर्ख व्यर्थ क्लेश पाते हैं इस कर्म से शान्ति को प्राप्त कभी नहीं होंगे ॥

उत्तर ३१—इस श्लोक वा ऐसे अनेक श्लोकोंको सनातन धर्मी वेदानुगामी प्रायः सभी विद्वान् लोग जानते और मानते हैं, ऐसे प्रमाणों में कभी किसी विद्वान् को लेशमात्र भी सन्देह हुआ न होता है और न होगा। कारण यह है कि ऐसे प्रमाण सनातन धर्म सिद्धान्त के सर्वथा अनुकूल हैं विरोध कुछ नहीं है समाजी लोग या तो जानते हुए भी मूर्खों को बहकाने के लिये ऐसे प्रश्न उठाते हैं अथवा अपने अज्ञान में ग्रस्त होने के कारण ऐसे प्रश्न करते हैं। हम ने आज तक कोई मूर्खसे मूर्ख वा नीच से नीच सनातनी मनुष्य भी ऐसा नहीं देखा जो कहता वा मानता हो कि यह पाषाणादि की मूर्त्ति ही ईश्वर वा देवता है किन्तु सभी सनातनी कहते मानते हैं कि यह अमुक देवताकी प्रतिकृति वा प्रतिमा है इस

के पूजनसे भगवान् हम पर प्रसन्न व सन्तुष्ट होंगे। इसी उद्देश से ऋषियों ने प्रतिमापूजन की आज्ञा दी है। जब यह कहा गया कि "मट्टी आदि की मूर्त्ति में ईश्वर बुद्धि करने वाले पूजादि कर्म से क्लेश मात्र पाते और परम शान्ति को प्राप्त नहीं होते,, तो इस कथन की अर्थापत्ति से दो बातें निकलतीं हैं एक तो परम शान्ति के निषेध से मध्यम वा अल्प शान्तिको वे प्राप्त होते हैं। द्वितीय जो मट्टी-आदि की मूर्त्ति को ईश्वर न जान कर किन्तु ईश्वर की मूर्त्ति जानते मानते हुए उपासना भक्ति पूजा करते हैं वे क्लेश नहीं पाते किन्तु परम शान्ति को प्राप्त होते हैं। पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर को आत्मा समझने के तुल्य मूर्त्ति को ईश्वर समझना अज्ञान वा महा अज्ञान है। स्वा० दयानन्द जीने सत्यार्थप्रकाश १४ समुल्लास नं० ३० पृ० ५३१ में लिखा है कि "जिन को तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन २ मूर्त्तियों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उन के सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं" यहां स्वामी दयानन्द जी को सनातनधर्म का सिद्धान्त ठीक लिखना पड़ा, समाजी का प्रश्न स्वा० दयानन्द के लेखसे विपरीत है। और (मृच्छिलाधातु०) इत्यादि श्लोकों का अभि-

भाव स्पष्ट ही यह है कि यदि कोई महामूर्ख कभी मूर्त्तिको ही ईश्वर माने उस से भिन्न मूर्त्तिमान् को कुछ न माने तो उस को मूर्त्तिपूजा से होने वाला परम शान्ति रूप फल न होकर स्वल्प शान्ति फल होगा जिस से देव पूजा जैसे उत्तम कर्मका अनुष्ठान क्लेश उठाना मात्र व्यर्थ सा माना जायगा। इस से मूर्त्ति से मूर्त्तिमान् पूज्य देव को भिन्न शुद्ध निर्विकार मानते हुए पूजन करना चाहिये ॥

प्रश्न ३२—यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौमइज्यधीः। यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्-जनेष्वभिज्ञेषु स एवगोखरः।

भागवत स्कन्ध १०। तथा विश्रामसागरमें लिखा है कि—
जे निज देह मांक अभिमानी। आतम बुद्धि लखें अज्ञानी ॥
हरि कलत्र अपना कर मानें। प्रतिमामात्र देव कर जानें ॥
सलिलमात्र तीरथ जिन जाना। सन्तनमें कुछ भाव न आना ॥
ते गोखर सम जानो प्राणी। परत नरक में वाचक ज्ञानी ॥

उत्तर ३२—वात पित्त कफमय त्रिधातुक स्थूल शरीरको आत्मा नाम अहंपद वाच्य मानना, स्त्री पुत्रादि को अपने प्रिय मान के उन में विशेष मोहित होना इन दो बातों में तो समाजी लोग ही अगुआ हैं इस से यह दोष सनातनियों की

अपेक्षा समाजियों पर ही विशेष रूप से सिद्ध है। अब रहा केवल प्रतिमा को देवता जानना तथा गंगाजल मात्र को तीर्थ मानना इन दो बातों का दोष, सो सनातन धर्मी प्रायः सभी लोग केवल प्रतिमा को देव और केवल जल को तीर्थ नहीं मानते किन्तु प्रतिमा द्वारा उस २ शिव विष्णु आदि देव का पूजन करते मानते हैं प्रतिमादि सबमें विद्यमान भी प्रतिमादि से भिन्न विष्णु आदि देवों को सभी मानते और गंगा जल मात्र को तीर्थ न मानने का प्रत्यक्ष प्रमाण गंगामन्दिरों में जलाधिष्ठात्री गंगा देवी की मूर्त्तियों की स्थापना और पूजा है, गंगाजल मात्र को तीर्थ मानते तो जल मात्र की प्रतिमा गंगा की बनाई जाती। जब प्रतिमा मात्रको देव और गंगा जल मात्र को तीर्थ कोई सनातन धर्मी मानता ही नहीं तब समाजी का कुतर्करूप प्रश्न अज्ञान से किया सिद्ध है। यदि कोई मूर्ख सनातनी वैसा मानता हो तो उस मनुष्यके अज्ञान दोष से सनातनधर्म के मन्तव्य में कोई दोषारोप कदापि हो नहीं सकता।

आगे समाजी महाशयने ३३ वां नम्बर पूरा करनेके लिये लिखा है कि "ईश्वर निराकार और निर्विकार है वह जगदाकार स्वयं नहीं बनता जैसे कि-

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते ।

न उसका कोई कार्य और न करण है अर्थात् वह किसी पदार्थ का उपादान कारण नहीं है। "आगे कैसे अमूरत की मूर्त्ति बनावें"। इत्यादि भजन लिखे हैं।

इसका संक्षेप से उत्तर यही है कि काल और आकाश तथा शब्दादि निराकार निर्विकार होने पर भी क्षण पल दिन रात्रि आदि सहस्रों खण्ड काल के हो गये और घड़ी आदि सहस्रों मूर्त्तियां बन गईं तो भी जैसे काल अखण्ड है और अब भी निराकार निर्विकार ही बना है। वेदादि शास्त्रोंकी सभी लिपि शब्दों की मूर्त्तियां हैं तब भी शब्द में कुछ विकार जैसे नहीं होता वैसे ही ईश्वरकी मूर्त्तियां बन जाने पर वह निराकार निर्विकार रह सकता है उसके स्वरूप में किसी प्रकार का दोष नहीं आता जैसे काल और शब्दादि की मूर्त्तियों से काल का और शब्द पद वाक्य रूप शास्त्रोंका ज्ञान होता है वैसे ही ईश्वर की मूर्त्तियों से ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों का परिचय मिलता है। (न तस्य कार्यं करणं च विद्यते) इत्यादि श्रुति का अभिप्राय स्पष्ट है कि मट्टी ही जैसे घट बन जाती है वैसे ही वह सबका उपादान कारण होता हुआ भी कार्य पदार्थोंमें मृत्तिकादिके तुल्य स्वयं बद्ध वा

लिप्त नहीं होता, जैसे कि मास। संवत्सर दिन रात्रि आदि काल ही के खण्ड होने पर भी काल में अबतक कुछ विकार वा दोष आरोपित न हो सका वैसे ईश्वर को भी जानो। जैसे अमूर्त्त काल वा शब्दादि की मूर्त्तियों को समाजियों ने भी बनाया और माना वैसे वेद के प्रमाणानुसार सगुण साकार ईश्वर की मूर्त्तियों को हम भी बनाते पूजते हैं॥

आगे समाजी ने मानसपूजास्तोत्र के चार श्लोक (पूर्णस्यावाहनं कुत्र) इत्यादि लिखे हैं सो हम लोग मानस पूजन में बाह्य पूजन को ऐसा ही मानते हैं परन्तु बाह्यपूजन में इस मानसपूजा स्तुति का उपयोग नहीं मानते। जैसे मानस समाधिस्थ दशा के सुख के समय बाह्य सुख खंडित हो जाने पर भी वा निकृष्ट ठहर जाने पर भी व्युत्थान दशा में बाह्यसुख खण्डित वा निकृष्ट नहीं ठहरता वैसे यहां भी सांसारिक बाह्य व्युत्थान दशा में मूर्त्ति का बनना पूजना सभी ठीक है। परन्तु समाजी ने अपने मन्तव्य का खण्डन इसी मानस पूजा स्तोत्र में अपने अज्ञान से नहीं देख पाया सो हम दिखाये देते हैं यथा—(नित्यतृप्तस्य नैवेद्यम्) अर्थात् जो नित्य तृप्त है उसको नैवेद्य अर्पण करना वा भोग लगाना कैसे बनेगा ? ऐसी दशा में समाजी को बताना चाहिये

कि स्वा० दयानन्द ने आर्याभिविनय पुस्तक में लिखे अनुसार निराकार ईश्वर को सोमरस कैसे पिलाया था ? । द्वितीय (वेद वाक्यंस्थेयस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते ; अर्थात् जिसमें मन वाणी का गम्य न होने से जो अवेद्य वा अज्ञेय है उसकी स्तुति प्रार्थना समाजी लोग कैसे कर सकते हैं । सो बतावें ॥

पाठक महाशय ! समाजियों द्वारा किये गये मूर्त्तिपूजा विषयक प्रश्नों का समाधान समाप्त हो गया हमें मूर्त्तिपूजा के सम्बन्ध में जितने प्रश्न मिले उन सब का समाधान इसमें कर दिया गया, भविष्यत् में यदि और प्रश्न मिलेंगे तो उन का भी समाधान अगले संस्करण में सन्निवेशित कर दिया जायगा, अन्त में हमारा एक निवेदन पाठक महादयों से है कि परमात्मा की पूजा प्रार्थना उपासना का सब से उत्तम और सब से सरल तरीका यदि कोई है तो वह मूर्त्तिपूजा ही है इसलिये आप लोग हजारों कुतर्क किये जाने पर भी इस अपने सर्वोत्तम कर्त्तव्य का त्याग न करें । क्योंकि अनन्त काल से मूर्त्तिपूजा का प्रचार भारतवर्ष में रहा है और इस समय समस्त देशों में किसी न किसी प्रकार से मूर्त्तिपूजा का प्रचार मौजूद है । समस्त सभ्यदेशों में मूर्त्तिपूजा का

प्रचार भारतवर्ष से ही हुआ है क्योंकि जिस तरह अन्यान्य बातों में भारतवर्ष सब देशों से बढ़ा चढ़ा रहा है उसी तरह ईश्वरभक्ति का सर्वोत्तम उपाय मूर्त्तिपूजाका भी आविष्कार यहां के ऋषि मुनियों द्वारा हुआ है, ईश्वर ने स्वयं वेदवाणी द्वारा मनुष्यमात्र को मूर्त्तिपूजन करनेका विधान किया है। जो आर्यसमाजी आदि विधर्मी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं स्वयं उन्हीं के मान्य ग्रन्थों में प्रकारान्तर से मूर्त्तिपूजाका विधान मौजूद है इस बात को हम इस पुस्तक में कई जगह दिखा चुके हैं इसलिये नास्तिकोंकी बहकावट में पड़कर ऐसे उपयोगी कर्त्तव्य का त्याग किसी को न करना चाहिये।

अन्तमें भगवान् से मी प्रार्थना है कि वे प्रच्छन्न नास्तिकों को सुबुद्धि दें जिस से वे हट छोड़ कर इस परमोचित कर्त्तव्यका त्याग न करें॥

शमिति।

पुस्तक मिलने का पता—

मैनेजर—ब्रह्मप्रेस

इटावा।